॥ श्रीहरि. ॥

नकली और असली प्रेम

(पढ़ो, समझो और करो,

भाग ८)



प्रकाशक
गोविन्दभवन कार्यालय,
गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत्	२०२६	प्रथम	संस्करण	१०,०००
संवत्	२०२६	द्वितीय	संस्करण	१५,०००
संवत्	२०२९	तृतीय	संस्करण	१०,०००
संवतं	२०४१	चतुर्थ	संस्करण	२०,०००
			कुल	५५,०००

कुल पचपन हजार

मूल्य एक रुपया पचास पैसे

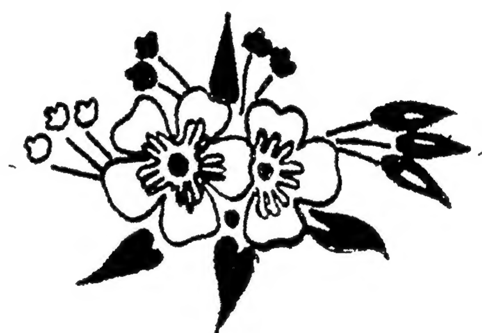
मिलने का पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

मुद्रक—हिन्दप्रेस, दीन दयाल रोड, लखनऊ

निवेदन

यह 'नकली और असली प्रेम' नामक पुस्तिका 'पढ़ो, समझो और करो' की आदर्श चरित्रकथाओंका आठवाँ भाग है। इस भागमें ऐसी बहुत-सी घटनाएँ दी गयी हैं, जिनके अध्ययन, पठन, मनन तथा यथायोग्य जीवनमें उतारनेसे लोक-परलोकमें कल्याण एवं परमार्थके मार्गमें अग्रसर हुआ जा सकता है। आशा है, सद्विचारों तथा सद्भावोंके प्रेमी पुरुष और देवी-इसके अध्ययन तथा प्रचारसे लाभ उठावेंगे और इसका अधिकाधिक प्रचार कर पुण्यके भागी होंगे।

—प्रकाशक



श्रीहरिः

विषय-सूची



श्रीहरिः

नकली और असली प्रेम

[पढ़ो, समझो और करो, भाग ८]

नकली और असली प्रेम

रामविनोद एम्० कॉम० पास करके कानन पढ़ रहा था। बड़ा सुन्दर सुडौल गौर शरीर, मनोहर मुख, विशाल आँखें–सभी चित्तको खींचनेवाले थे। दो वर्ष पहले, एक भले उच्च घरानेकी सुन्दर सुशील कन्या चम्पाके साथ उसका विवाह हो चुका था। वह मैट्रिकतक पढ़ी थी। उसके स्वभावमें शील, आर्यनारीके योग्य लज्जा, सेवा, त्याग, नम्रता, सादगी—सभी एक-से-एक बढ़कर गुण थे। पर स्वाभाविक ही वह चटक-मटक, फैशन, इधर-उधर भटकना, पर-पुरुषोसे मिलना-जुलना, गदे हँसी-मजाक, रोज सिनेमामे जाना आदि पसन्द नहीं करती थी। रामविनोद पढ़नेमें तेज होनेपर भी आजकलकी उच्छृङ्खलताका

शिकार था। उसीके कॉलेजकी एक लड़की मनोरमासे उसका प्रेम हो गया। मनोरमामें रामविनोदकी मनचाही चीजे थी। रामविनोदके पिता पैसेवाले थे, मनोरमाके पिता गरीब थे और शराबी तथा अवारा थे। मनोरमाने रामविनोदके सौन्दर्य तथा वैभवका लाभ उठानेके लिये उससे रोज-रोज मिलना, प्रतिदिन सिनेमामे ले जाना, इधर-उधर सैर-सपाटेमें घूमना और चम्पा-के प्रति दुर्भाव भरना शुरू किया। चम्पा घरमे रहती, घरका काम करती, यथासाध्य रामविनोदके अनुकूल रहकर सेवा करती, हर तरहसे त्याग स्वीकार करके रहती, पर रामविनोद बात-बातपर उसे डॉटता, अपमान करता, कहता—'मुझे मुँह मत दिखा, तेरी-सरीखी नालायक, असभ्यके साथ मेरा क्या मिलान' आदि। वह बेचारी चुपचाप सब सुनती, पर कभी उसके मनमें पतिके प्रति घृणा नही हुई। अवश्य ही उसे पतिके आचारणपर दुःख होता, इसलिये कि दुराचारमय बनकर इनका भविष्य न बिगड़ जाय। वह अपना सुख नही चाहती; किन्तु पतिके भावी दुःखके चित्रोंको मन-ही-मन देखकर दुखी रहती।

इधर रामविनोदने मनोरमाकी रायकेअनुसार यह निश्चय कर लिया कि वह मनोरमाके साथ दो-तीन महीने बाद विवाह कर लेगा। चम्पाके आचरणमें मिथ्या दोष दिखलाकर उसे तलाक कर देगा। सारी योजना बन गयी ओर पैसेके लोभी किसी एक वकीलकी सलाहसे सब प्रकारके मसाले भी तैयार कर लिये गये। अब तो मनोरमा और रामविनोदका खुला दुराचार चलने

लगा। मनोरमाके पिताको शराब आदिके पैसे मिलते, अत. वे भी बहुत खुश थे। रामविनोदके पिता सीधे स्वभावके पुराने ढगके आदमी थे। वे कुछ बोलते नही थे।

एक दिन रामविनोद अपनी नयी कारमें मनोरमासे मिलने एक निश्चित स्थानकी ओर जा रहा था। स्वय ही कार चला रहा था। शराब पी रक्खी थी। नशेमे दुर्घटना हो गयी। कार एक पेडसे बुरी तरह टकरा गयी। रामविनोदकी एक टाँग टूट गयी। नाक तथा आँखोमे और मुखपर बड़ी चोट आयी। चेहरा विकृत होगया। पुलिसने अस्पताल पहुँचाया। घरवालोको खबर मिली। बेचारे बूढे पिता आये, माता आयी और रोती हुई चम्पा। अस्पतालमे इलाज हुआ। प्राण तो बच गये; पर एक टाँग-को घुटनेके नीचेसे काटना पड़ा, एक आँख जाती रही, नाक धँस गयी तथा चेहरा भयानक हो गया। रामविनोदने कई बार मनोरमाको याद किया। बार-बार खबर भेजी, पर वह नही आयी। 'परीक्षाका समय समीप है, इसलिये आना कठिन है'--एक चिटपर लिखकर भेज दिया। चम्पाने पढ़कर सुना दिया। रामविनोद लम्बी साँस खींचकर रह गया। इधर चम्पाने जो सेवा की, वह अकथनीय थी। वह खाना-पीना-सोना सब भूलकर पतिकी सेवामें जुटगयी। पाखाना-पेशाब कराना, फेकना, मवाद साफ करना आदि सब काम अपने हाथोसे करती। उसकी सेवापरायणता, परिश्रमशीलता, कार्यपटुता और बुद्धिमत्ताको देखकर अस्पतालकी प्रशिक्षण-विद्यालयो (ट्रेनिग स्कूलो) मे शिक्षा पायी हुई नर्सें भी दंग रह गयी।

डेढ़-दो महीनेमें रामविनोद कुछ ठीक हो गया। एक दिन मनोरमा आयी। रामविनोदके विकृत चेहरेकी ओर दृष्टि पड़ते ही उसने मुंह मोड़कर एक लिफाफा रामविनोदके हाथमें दिया और 'मुझे अभी बहुत जरूरी काम है, ठहरना सम्भव नहीं, पत्र पढ़ लेना'—कहकर बिजलीकी तरह कौंधकर तुरन्त चली गयी। रामविनोदने लिफाफेमेंसे पत्र निकालकर पढ़ा, उसमें लिखा था—

'रामविनोद! मुझे खेद है कि मोटर-दुर्घटनासे तुम्हें चोट आ गयी। पर मैं क्या कर सकती थी। परीक्षाकी तैयारी करनी थी। उधर इन दिनों प्रभातकुमारका प्रेम मेरे प्रति अत्यन्त बढ़ रहा था। वह कितना अच्छा है, तुम जानते ही हो। उसके साथ मिलने-जुलनेमें उसको तथा मुझको बड़ा सुख मिलता है, अतएव बहुत-सा समय इसमें लग जाता है। इसीसे मैं आ नही सकी। फिर, वह अविवाहित है, तुम्हे तो चम्पाको तलाक करना पड़ता; उसमें यह झगड़ा भी नही। दूसरे, तुम बुरा न मानना—मैं तो सदा ही स्पष्ट कहा करती हूँ। तुम्हारे योग्य भी मै नहीं हूँ। तुम्हारी इस स्थितिसे जितना अधिक चम्पाका मेल खायगा, उतना मेरा मेल खा भी नही सकता। मुझे भूल जाना। बस, क्षमा।'

—मनोरमा

इस रूखे, कर्कश, प्रीतिशून्य, स्वार्थपूर्ण, असभ्यताभरे पत्रको पढ़ते ही रामविनोदपर मानो वज्रपात-सा हुआ; परन्तु इसीके साथ उसकी चम्पाके प्रति अत्यन्त सद्भावना जाग उठी। देवी और दानवीके मूर्तिमान् चित्र सामने आ गये। उसने आँखोसे

आँसू बहाते हुए कहा—'चम्पा ! तुम देवी हो । तुमने मेरी जो सेवा की है और तुम जो कर रही हो, इसका कोई बदला नहीं है। मेरे प्रति तुम्हारे जो उपकार हैं, उन्हे मैं कभी भूल नहीं सकता। मैं सदा तुम्हरा ऋणी हूँ। मैने मोहवश तुम्हारे प्रति जो दुर्व्यवहार किया है, इसके लिये क्षमा करना............'

चम्पाने बीचमे ही रोककर कहा—'यह आप क्या कर रहे है ? सेवा और बदला कैसा ? आपका कष्ट तो मेरा ही कष्ट है। अपने-आप अपना काम करना सेवा थोड़े ही है। वह तो स्वाभाविक ही होता है। फिर उपकार तथा ऋणी होनेकी बात कैसी ? क्या अपने कामसे कोई अपना उपकार मानता या ऋणी होता है ? मैं तो सदा ही आपकी अभिन्न अङ्ग हूँ। फिर मुझे तो शुरूसे ही यह सिखाया गया है कि आप हर हालतमें मेरे परमेश्वर है। आप मेरे प्रति कोई बुरा व्यवहार करते है, यह देखना ही मेरे लिये पाप है। हाँ, यह चिन्ता अवश्य रहती है कि आप दुखी न हों।' यह कहती हुई चम्पा गदगद होकर रामविनोदके चरणोपर गिर पड़ी। रामविनोदने उठाकर उसे हृदयसे लगा लिया। ऐसा उसने पहली ही बार किया।

दोनोके नेत्र सजल, हृदय सुधा-रसपूरित और सर्वाङ्ग पुलकित थे। धन्य आर्यनारी !

—मदनमोहन शर्मा



आदर्श अफसर

घटना सन १९६० की है। पहली तारीख थी, इसलिये मन्दसौर ट्रेजरीमें वेतन लेनेवालोकी भीड थी। इसी दिन एकाउंटेट जनरल ग्वालियरको महीनेभरका हिसाब भी भेजा जाता है। अत प्रत्येक विभागके सभी कर्मचारी अपने-अपने कार्यमें व्यस्त थे। कोई पत्रक बना रहा था तो कोई बिलोकी जाँच कर रहा था। चपरासी भी सभी व्यस्त थे। कोई एकाउट-के बण्डल बाँध रहा था तो कोई साहबसे रजिस्टरमे तथा बिलो आदिपर हस्ताक्षर करवा रहा था।

उसी दिन पोस्टमैन भी पोस्टल स्टाम्प तथा स्टेशनरी लेने आया था। मैंने पोस्टल इंडेटकी जाँच करके स्टाम्प देने चाहे, तब देखा कि आलमारीके बाहर कार्डोके पैकेट पड़े हुए थे, इससे आलमारी खुल नही रही थी। अत पैकेटोको हटानेके लिये

मैने दो-तीन बार चपरासियोको पुकारा, परन्तु 'आते है, आते है'–कहकर उन्होने बहुत समय निकाल दिया। पोस्टमैन बहुत देरसे खोटी हो रहा था। मैने जाकर साहबसे कहा। साहबने चपरासियोको बुलाकर पूछा तो उन्होने इसका कारण कार्यमे व्यस्त होना बताया और कहा कि 'दो पारसल बाँधकर हम पैकेट हटा देते है।' साहबने काम करनेको कहकर उनको भेज दिया। फिर वे यह कहकर कि—'देखे पैकेट कहाँ पड़े है, उठकर मेरे साथ हो लिये। केश-विभागमें आकर उन्होंने आल्मारीके सामने रक्खे हुए पैकेटोको अपने हाथोसे उठा-उठाकर अलग रखना शुरू किया। मै शर्मके मारे झुक गया। मैने जल्दीसे उनके हाथोसे पैकेट ले लिये और नीची निगाह किये हुए कहा—'आप रहने दीजिये, मै उठा लूँगा।' तब लोकरे साहबने कहा– 'आज एकाउट भी जाना जरूरी है और पोस्टमैनको स्टाम्प देने भी। चपरासी इधर उधर कार्यव्यस्त है, अत. उनकी प्रतीक्षामे दूसरेको खोटी करना ठीक नही।' मै नीची दृष्टि किये पैकेटोको उठाता रहा।

उस दिन मुझे ऐसी शिक्षा मिली कि अब कोई कार्य नही होता है तो उसे मै स्वयं कर लेता हूँ। जो स्वय कार्य करके दूसरेको प्रेरणा प्रदान करता है, वही सच्चा अफसर है। यदि सभी अफसर इस प्रकारके कर्तव्यशील बन जायँ तो कार्य बहुत अच्छा होने लगे, इसमे कोई सन्देह नही।

—वी० डी० नागर



करुणा और कर्तव्यपालन

गत २८ जनवरी १९६२ की बात है, प्रातःकाल साढ़े सात बजे थे। अहमदाबादसे वेरावल जानेवाली सोमनाथ मेल ट्रेन कुंकावाव जंकशनपर आकर रुकी। मै एक भीड़वाले डिब्बेमें चढ़ गया।

समयपर गाड़ी चली। उसी समय एक टिकट-चेकर साहब हमारे डिब्बेमें चढ़ आये। उन्होने चेकिग शुरू की। मेरे सामने एक ग्रामीण वृद्ध स्त्री बैठी थी। उसके साथ एक पाँच सालका छोटा लड़का भी था। चेकर साहबने टिकट माँगे तो उस स्त्रीने एक टिकट दिया और लड़केके टिकटके बारेमें पूछे जाने-पर जवाब मिला कि लड़केकी बहुत छोटी उम्रके कारण उसका टिकट लेना अनावश्यक समझा गया। लड़केकी उम्र पूछनेपर वृद्धाने सच-सच पाँच सालकी उम्र बता दी। चेकर साहबने उस वृद्धाको समझाया कि 'तीन सालके बाद बच्चेका आधा टिकट लेना पड़ता है और अब उसकी भूलके कारण उस बच्चेके आधे टिकटका डबल चार्ज चुकाना पड़ेगा।'

डबल चार्ज और वह भी अहमदाबासे वडालतकका। चार्जकी रकम सुनकर वृद्धा घबरा गयी, अपनी अज्ञानजनित

भूलके पश्चात्तापको और अपनी विशुद्ध सरलताको शब्दोंमें व्यक्त करनेमें असमर्थ होकर वह आँसू बहाने लगी।

डिब्बेके अन्यान्य यात्रियोंने चेकर साहबको सलाह दी कि वे माफ कर दें। परन्तु इस बातको मानना उन्हें ठीक नहीं लगा; क्योंकि ऐसा करनेपर प्रकारान्तरसे जान-बूझकर मुफ्तमें मुसाफिरी करनेवालोंकी संख्या घटानेके बजाय उसे बढ़ानेकी एक राष्ट्रीय कुसेवा होती।

इस तरह 'करुणा और कर्तव्यपालन' की दुविधामें चेकर साहब डूबे थे कि उनकी बुद्धिने बीचका मार्ग निकाल दिया। उन्होंने वृद्धापर डबल चार्ज किया और उसकी रसीद भी दे दी, परन्तु पैसे उस वृद्धासे आधे टिकटके ही लिये। आधे पैसे चेकर साहबने स्वयं अपने पाससे चुका दिये।

चेकर साहबका यह कर्तव्यपालन देखकर सब दंग रह गये। उस समय उस वृद्धा देवीकी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि चेकर साहबपर आशीषका मूक अभिषेक कर रही थी।

कर्तव्यको ठुकराकर अथवा सत्ताका दुरुपयोग करके दया दिखलानेका दम्भ भरनेवाले लोग बहुत होते है, परन्तु स्वयं हानि उठाकर कर्तव्यभ्रष्ट न होकर भी मानवतायुक्त व्यवहार करनेवाले व्यक्ति विरले ही होते है। यही सार था यात्रियोंद्वारा की जानेवाली चेकर साहबकी प्रशंसाका।

—जयतीलाल प्र० पाठक, बी० एस्-सी० (ऑनर्स)



आदर्श उपकार

मैं सुन्दरवती महिला कालेजकी छात्रा हूँ। आज मै एक ऐसे छात्रके विषयमें लिख रही हूँ, जिसके कर्तव्य पालनपर छात्र-समाजको गौरव होना चाहिये। घटना इस प्रकार है। ता० ९।२।६२ को मैं अपने कालेजसे सरस्वतीकी पूजा करके लौट रही थी। भागलपुरस्थित नवयुग विद्यालयके पास एक गुण्डे छात्रने मुझसे छेड़खानी शुरू कर दी। उस गुण्डे छात्रने मुझे जबरदस्ती एक रिक्शेपर बैठाकर ले जाना चाहा। मै चिल्लाने लगी। उस समय वहाँ कोई नही था। भगवान्की कृपासे एक छात्र साइकिलपर उस ओरसे निकला। उसने मुझे चिल्लाते देखकर उस गुण्डेको ललकारा। उस गुण्डेने चाकूसे इस छात्रपर प्रहार करना चाहा, परन्तु इस छात्रने, जो उस गुण्डेसे अधिक बलवान था, उसे खूब पीटा और खुद भी चोट खायी। अन्तमें हारकर वह गुण्डा रिक्शेपर भाग गया। छात्रने पीछा करना चाहा, परन्तु मैने रोक दिया। फिर भी इसने उसका पीछा साइकिलसे किया। इसके बादका हाल मैं नही जान सकी। उस कर्तव्यपरायण छात्रका नाम मुझे उसकी गिरी हुई डायरीसे मिला। उनका शुभ नाम है-- 'रणजीतकुमार चौधरी'। वे टी० एन० बी० कालेज, भागलपुरके pre-University के Ex-Student हैं।

—रूपा



सर्पका भागवतपारायण-श्रवण

गत २१ दिसम्बर १९६१ ई० की बात है। इलाहाबाद से ४२ मील दूर केसरिया ग्रामके अन्दर लोग श्रीमद्भागवत-पाठ करा रहे थे। वहाँसे एक फर्लाङ्ग दूर एक खेतसे एक सर्प निकला और जहाँ भागवत हो रही थी, उधरको बहुत तेजीसे बढ़ा। कुछ लोग उसे मारनेके लिये चले; परन्तु भागवत कहनेवाले पण्डितजीने लोगोंको रोक दिया और वे उस सर्पको मारनेमें असफल रहे। थोड़ी देर बाद पण्डितजीने उस सर्पसे कहा कि 'यदि आपको भागवत-पाठ सुनना है तो आप इस सभामें बैठ जायँ; दूर क्यों है।' सर्प इतना सुनते ही तुरन्त उस सभामें आकर एक ओर बैठ गया और वह सात दिनोंतक भागवत सुनता रहा। २८ दिसम्बर सन् १९६१ ई० को जब भागवतसप्ताह समाप्त हो गया और राजा परीक्षित्की कथाके बाद जब श्रीकृष्ण भगवान्की जय बोली गयी, तब वह सर्प अपना प्राण त्यागकर स्वर्गको चल बसा। लोग सर्पको दिनमें पीनेके लिये दूध दे देते थे और वह रातमें चौकीके नीचे आराम करता था।

—फतेहचन्द साहू



वीरांगना

घटना गत जनवरीकी है। उत्तर रेलवेके सोदपुर विभाग में वाडमेर लाइनपर धुनाड़ा नामक एक छोटा-सा स्टेशन है। एक दिन एक राजपूत अपने छोटे-से पुत्र तथा तरुणी पत्नीके साथ रात-की गाड़ीसे वहाँ उतरा। उतरते ही वह अपनी पत्नीसे यह कहकर कि—'गाँव कुछ दूर है, मैं गाड़ी लाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहना—।' गाँवकी ओर चल दिया।

कुछ ही समय बाद दो नर-राक्षस आये और उस स्त्रीसे कहने लगे कि 'तुम यहाँ अकेली क्यों बैठी हो, हमारे क्वार्टर में चलो। वहाँ और भी स्त्रियाँ हैं।'

उस स्त्रीने कहा—'मेरे पति मुझसे यहीं ठहरनेको कहकर गाड़ी लेने गाँवमें गये है। अतः मैं यही ठहरूँगी।'

थोड़ी देरके बाद उनमेंसे एक आदमीने वापस लौटकर उस स्त्रीको फुसला-समझाकर क्वार्टरमें जाकर ठहरनेके लिये विवश कर दिया। वह वेचारी अपने वच्चे तथा सामानको लेकर वहाँ चली गयी। उसने क्वार्टरमें जाकर देखा—वहाँ

कोई भी स्त्री नहीं है। इधर वे दुष्ट अपनी दुर्वासना पूरी करनेके लिये उसे बुरी तरह छेड़ने लगे। वह उनसे रक्षा पानेके लिये पेशाबका बहाना करके—सामान तथा बच्चेको वहीं छोड़कर बाहर निकल गयी और तुरन्त ही उसने क्वार्टर के किवाड़ बन्द करके बाहर साँकल लगा दी। अब तो वे बदमाश घबराये और किवाड़ खोलनेके लिये पुकारने लगे। उस स्त्रीने साफ कह दिया कि मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगी।

बदमाशोंने धमकाकर कहा कि 'तू यदि दरवाजा नहीं खोलेगी ता हम तेरे बच्चेको मार डालेंगे।' इसपर सतीने कहा— 'भले ही तुम बच्चेको मार दो और मेरा सामान भी रख लो; परन्तु मै दरवाजा नही खोलूंगी।'

उन क्रूर राक्षसोंने नन्हें-से शिशुका एक हाथ काटकर खिड़कीसे बाहर फेंक दिया और कहा—'तू अब भी दरवाजा खोल दे, नहीं तो हम तेरे बच्चेको जानसे मार डालेंगे।' इसपर जब उसने दरवाजा नहीं खोला, तब उन नर-पिशाचोंने बच्चे का एक पैर काट डाला। सतीने अपने हृदयको वज्र-सा कठोर बना लिया। वे राक्षस अन्दरसे चिल्लाते रहे और सती बाहर हुंकार करती रही। तदनन्तर उन लोगोंने उस नवजात शिशुका सिर काटकर कहा—'तू अब भी मान जा—दरवाजा खोल दे।' रात ढल चुकी थी। इसी बीच वह राजपूत (उस सती

का पति) लौट आया और उधरसे निकला। सतीने उसे पुकारकर बुलाया और सारी घटना कहकर सुना दी। फिर ललकारकर कहा—'तुम्हारे पास तलवार है, इन्हें मार सको तो मार डालो, नहीं तो मैं मारूँगी।' पुरुष उसकी बात सुनकर काँप उठा। पर सतीने विकराल रूप धारणकर तलवार हाथमें ले ली और किवाड़ खोल दिये। दरवाजा खुलते ही वे भागने की कोशिश करने लगे। सतीने तलवार चलायी तब एक उसकी ओर लपका। सतीने तुरन्त उसका सिर धड़से अलग कर दिया, फिर दूसरेकी भी तुरन्त यही गति हुई। सतीने सामान लिया और बच्चेके कटे शरीरके टुकड़े बटोरकर उठा लिये और वह स्वामीको साथ लेकर सीधी थानेपर पहुँची। उसने थानेके अफसरको सारी घटना सुना दी। थानेदार उसके सतीत्वरक्षणके लिये स्वीकार किये हुए वीरत्वके विवरणको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। सरकारसे अनुरोध करके उसने उस देवीको पांच सौ रुपयेका पुरस्कार दिलवाया।

पुलिसने उनके घरवालोंको सूचना भेजकर उन्हें बुलाया और दोनों नर-पिशाचोंका पोस्टमार्टम करवाकर उन्हे फूंक दिया।

इस वीराङ्गना सतीके श्रीचरणोंमें बार-बार नमस्कार।

—सोनपुरी ल० गोस्वामी



कर्तव्य-पालन

वार्षिक परीक्षा चल रही थी, विद्यार्थी प्रश्नोके उत्तर लिख रहे थे। एक नवीन नियुक्त अध्यापक भी सुपरवाइजर थे। फिरते-फिरते उनकी दृष्टि एक विद्यार्थी पर पड़ी, उसको खड़ा किया गया और उसकी बेंचसे घरसे लिखकर लाये हुए कागज मिल गये। अध्यापकने तुरन्त उसका पेपर ले लिया और उसे निकाल दिया। यह देखकर दूसरे अध्यापक तो भौचक ही रह गये। वह लड़का इसी स्कूलके प्रिंसिपलका पुत्र था। दुपहरकी रिसेसमें दूसरे अध्यापक ने उस अध्यापक को उलाहना देते हुए यह सलाह दी कि अब भी उस लड़केके कम रहे नम्बरोंको पूरा करके अपनी बाजी सुधार लेनी चाहिये। पर अध्यापक आदर्शवादी थे। स्वय कुछ बुराई तो की नही, फिर अब यह बुराई क्यो की जाय ! नौकरीकी

अपेक्षा उन्हें आदर्श उन्हें अधिक प्रिय थे ।

परिणामका दिन आ पहुँचा । चोरीके अपराधमें उसे अनुत्तीर्ण कर दिया गया । अध्यापकने अपने आदर्शका त्याग नहीं किया । अध्यापककी नौकरी सभीको जोखिममें दीखने लगी । इतनेमें ही चपरासीने आकर उन अध्यापकसे कहा—'आपको प्रिंसिपल साहब बुलाते है ।' ऐसा प्रसङ्ग पहले कभी नही आया था ।

अध्यापक धीरे-धीरे, पर दृढ़ पादक्षेप करते प्रिंसिपलकी आफिसमें पहुँचे । कुछ इधर-उधरकी बातचीतके बाद प्रिंसिपल महोदयने कहा—'मुझे इससे बहुत ही आनन्द हो रहा है कि आप आदर्शको पकड़े रहे और नियमानुसार आपने मेरे लड़केको अनुत्तीर्ण कर दिया । आपने कदाचित् उसे उत्तीर्ण कर दिया होता तो मैं आपको नौकरीसे अलग ही कर देता और'' ''''।'

'और साहेब ! इस समय यदि उसको उत्तीर्ण करनेके लिये मुझपर दबाव डाला जाता तो मै अपनी जेबमें त्यागपत्र रखकर ही आया था ।' अध्यापकने कहा ।

यह सुनकर साहेबका आनन्द दूना बढ़ गया (अखण्ड आनन्द)

—इज्जतकुमार त्रिवेदी



ईमानदारसे चोर और चोरसे ईमानदार

हरनारायण सफल व्यापारी थे। राजस्थानसे सुदूर आसाम में जाकर उन्होने पर्याप्त धन कमाया था। बड़े परिश्रमी और सत्यशील थे। इनके दो सन्तानें थीं—बड़ी लड़की गोदावरी और छोटा लड़का रामप्रसाद। गोदावरी रामप्रसादसे बारह वर्ष बड़ी थी। हरनारायणका देहान्त हुआ, उस समय रामप्रसाद केवल एक वर्षका था। उसके दो ही वर्ष बाद हरनारायणकी स्त्रीका भी देहान्त हो गया। दोनो बच्चे अनाथ हो गये। गोदावरीकी सगाई हो चुकी थी, विवाह होने की तैयारी थी कि उसकी माँके अकस्मात् मर जानेसे वह रुक गयी। पैसा काफी था। हिसाब-किताब भी सब साफ था। हरनारायण की बहिन रामी अपने पुत्र सदासुखको लेकर वहाँ आ गयी। सदासुखका हृदय तामस था, पर वैसे वह बड़ा चतुर और व्यवहारकुशल था। उसने दूकानका सारा काम सम्भाल लिया और रामी दोनों बच्चोंकी देख-भाल करने लगी। गोदावरीका विवाह भी कर दिया गया। रामप्रसाद पढ़ने लगा। गोदावरी अपने घरपर सुखी थी। रामप्रसाद लगभग दस-बारह वर्षका हुआ, तबतक उसकी बूआ (सदासुखकी माता) का देहान्त हो गया। अब सदासुखकी नीयत बिगड़ी। उसने रामप्रसादके बचपन तथा गोदावरीके विश्वासका अनुचित लाभ उठाकर धीरे-धीरे सारी सम्पत्ति हड़प ली और दो-तीन सालमें झूठा घाटा दिखलाकर

कहने लगा कि 'अब कैसे काम चलेगा। पूंजी तो हमारी घाटेमें लग गयी।' रामप्रसाद इस समय लगभग १५ वर्ष का हो गया था। बेचारा क्या करता--गोदावरीको इस बात का पता लगा, तब वह आयी, उसके पति आये, पर सदासुखने झूठे बही खाते बना रक्खे थे। दिखा दिये। गोदावरी अपने भाई रामप्रसादको साथ लेकर घर चली गयी और दूकान उठा दी गयी।

सदासुख भी ऊपरसे दुःख प्रकट करता हुआ—हर्षभरे हृदयसे देश चला गया। उसका वह हर्ष तामसी था; क्योकि उसको भय बना था कि मेरा कहीं भण्डाफोड़ न हो जाय। हुआ भी यही। पाँच-छः वर्ष बाद जिन नेमी चन्द नामक व्यापारीके यहाँ झूठा जमा-खर्च करवाया था, उसके मनमे राम जागे—छोटे बच्चे रामप्रसादकी दुर्दशाके समाचार सुनकर नेमीचन्दका हृदय कांप गया और उन्होंने गोदावरीके पति नौरंगरायके पास जाकर गोदावरी तथा रामप्रसादको अपने पास बैठाकर सारा जमा-खर्च दिखा दिया और कहा कि 'तीन हजार रुपयेके लोभसे मैंने अस्सी हजार रुपयेका झूठा जमा-खर्च तीन वर्षमे किया है। मैं कोर्टमे साबित कर दूंगा, मुझे भी चाहे सजा हो जाय, पर मैं सदासुखको तुम्हारे पैसे नही खाने दूंगा।'

ये सब लोग इस बातको सुनकर दंग रह गये। इन्हे विश्वास ही नही होता था कि सदासुख भी कही ऐसा काम कर सकता है। नेमीचन्दने समझाया कि 'लोभ ऐसी ही बुरी चीज है। पैसेको देखकर नीयत बिगड़ ही जाती है। मेरी

भी तो विगड़ गयी, तभी तो मैंने तीन हजारके लोभसे तुम बच्चोको इतना नुकसान पहुँचाया और एक विश्वासघाती चोरकी सहायता की। यो कहकरजब सारे बहीखाते दिखलाये, तब इन्हें विश्वास हुआ। गोदावरी, उसके पति और रामप्रसाद तीनो ही सात्त्विक वृत्तिके थे। इन्हें सदासुखकी इन करनीपर क्रोध तो नही हुआ, बड़ा दु:ख हुआ—यह ओचकर कि उसकी नीयत क्यों बिगड़ी। उन्होंने मुकदमा चलाना तो स्वीकार नही किया; पर सदासुखसे मिलकर बात करनेका किश्चय किया। तदनुसार ये तीनो और नेमीचन्द उसके पास देशगये।

वह इन सबको देखकर सहम गया। पर वाहरसे वहुत आवभगत की। खा-पी लेनेके बाद सारी बातें उससे कहीं सव कुछ सप्रमाण था। इससे वह क्या बोलता। अपनी भूल उसने स्वीकार की और कहा कि 'मेरे हाथमे ही सब रुपये रहते थे। कुसगमे पड़ गया और एक दिन रातको मेरे मनमे बुरे भाव आये। मैंने एक दोस्तसे सलाह की, वह भी कुसगी तथा अवारा था। उसने भी सोचा, कुछ हमारे हाथ लगेगा, उसने मेरा समर्थन किया पाँच हजार उसे मिले। उसने ही नेमीचन्दजीको जमा-खर्चके लिये तैयार किया और यह काण्ड मैंने कर डाला। कुछ रुपये तो कुसंगतिमे लग गये। फिर देशमें हवेली वनाली और कुछ रुपये लड़कीके विवाहमें खर्च कर दिये। मेरे पास अब नगद कुछ भी नही बचा है। मुझपर केस करोगे तो मैं बदनाम हो जाऊँगा।' यो कहकर वह रोने लगा। सचमुच ही वह पश्चातापकी आगसे इस समय जल रहा था।

गोदावरी तथा रामप्रसादका हृदय पसीज गया। गोदावरी-ने कहा—'भाईजी ! आप चिन्ता न करें। मुझको तथा भैयाको रामी बूआजीने तथा आपने ही उस समय पाल-पोसकर हमारा जो महान् उपकार किया था, उसका कोई बदला नहीं हो सकता। आप यदि दुकानमें अपना हिस्सा रख लेते या कहकर रुपये ले लेते तो आपका अधिकार ही था। आपसे कुसंगके प्रभावसे यह बुरा कृत्य हो गया। पर अब पश्चात्तापकी आगसे आपका वह पाप जल गया है। मैं आपके आशीर्वादसे प्रसन्न हूँ। भैया रामप्रसादकी दुकानमें पाँती कर दी थी। यह भी अब बीस-तीस हजारकी पूंजीवाला हो गया है। आप आशीर्वाद दीजिये और हो सके तो मेरे पिताजीकी पुरानी दूकानको फिरसे चालू करके इसका काम सँभालिये। रामप्रसादके पास पूंजी है ही, यह आपके पास रहेगा। हमलोग भी देख-भाल करते रहेंगे। आप तैयार हो जाइये।' नौरंगराय और बच्चे रामप्रसाद ने भी यही करनेको कहा।

गोदावरी आदिके इस सुन्दर बर्तावको देखकर सदासुख चकित हो गया। उसके हृदयमें पश्चात्ताप तो था ही, अब तो वह कृतज्ञतासे भर गया। हरनारायणजीकी पुरानी दूकान फिरसे चालू हो गयी। इसके बाद तो सदासुख इतना बदला कि मानो सत्य, ईमानदारी और सेवा उसके स्वभाव ही बन गये।

—गिरधारीलाल



मंद करत जो करइ भलाई

लगभग दो तीन वर्ष पूर्वकी यह घटना है। घटना क्या है, मानव-मनकी छिपी अन्धकारमयी गुफाओकी एक भयानक झाँकी है। भयानक विस्फोट जिस प्रकार कभी-कभी पृथ्वीके गर्भमें छिपी वस्तुओको निकालकर बाहर फेक देता है, उसी प्रकार घटनाएँ भी कभी-कभी मानवके अन्तःप्रदेशको उलीचकर बाहर कर देती हैं और तब हम सोचने लगते हैं कि वैदिक ऋषियो और प्राणाचार्योंने मानव-मनके बारेमे जितने भी सूत्र गढ़े हैं, उनमें कितनी सत्यता है। एक ओर जहाँ इस मनकी विशालताके आगे समुद्रोंकी गहराई और गिरिशृङ्गोकी उत्तुङ्गता तुच्छ और नगण्य प्रतीत होने लगती है, वहाँ दूसरी ओर यह कितना सकीर्ण, तग और कृतघ्न होता है कि अपने उपकारीका रक्त-पान करनेमें भी यह आगा-पीछा नही सोचता है।

बात यों हुई कि एक अध्यापक महोदय मानसिक रुग्णतावश जब-तब 'मेडिकल लीव' पर रहते थे। उस समय भी वे छुट्टीपर थे, किन्तु जब उन्हें किन्हीं सूत्रोसे पता चला कि दफ्तरसे उनका वेतन लगकर आया है तो वेतन-वितरणके दिन अपने प्रधानाध्यापक महोदयके पास पहुँचे और वहाँ अपनी विपन्नावस्थाका वर्णन कर उस वेतनको देनेकी प्रार्थना की। सरकारी नियमानुसार मेडिकल लीवपर रहते व्यक्तिको वेतन उसी समय मिलता है, जब वह स्वस्थ होकर रोग-मुक्त

प्रमाण-पत्रके साथ कामपर लग जाता है; किन्तु कुछ तो उसकी करुण कहानी सुनकर और कुछ आर्थिक संकटभारसे ग्रसित उसकी दीन दशाको निहारकर प्रधानाध्यापकजीने वह वेतन उसे दे दिया; किन्तु वेतन प्राप्त करनेकी आफिस-कापी-पर उसके हस्ताक्षर लेना भूल गये। बादमे जब उन्हें इस चीजका ज्ञान हुआ तो उन अध्यापकका ढुंढ़वाया गया; किन्तु वे तो तबतक जा चुके थे। कागज दफ्तर पहुँचा दिये गये। बात आयी-गयी हो गयी। समय काले-धौले पंखोंपर सवार हो उड़ता रहा।

तब एक दिन उन्हीं अध्यापकने उच्चाधिकारियोंके पास प्रार्थनापत्र भेजा कि उन्हे अमुक मासका वेतन दिलवाया जाय; क्योंकि उस अवधिमे वे मेडिकल लीवपर थे। प्रधानाध्यापकजीने उससे कहा—'भैया! तुम्हें वेतन मैंने दिया है और तुम्हारे हस्ताक्षर भी ओरिजिनल कापीमें मौजूद हैं। हाँ, दूसरी कापीमें तुम उस समय शीघ्रतावश हस्ताक्षर न कर सके थे। सो अब कर दो। विश्वास न हो तो दफ्तर जाकर देख आओ।' यों कहकर उन्होंने वह दूसरी कापी उनके सामने हस्ताक्षरके लिये सरका दी।

'मैं दस्तखत-वस्तखत कुछ नहीं करूँगा और न मैं वेतनके विषयमें ही कुछ जानता हूँ, आपको जो कुछ कहना है, अधिकारियोंसे कहिये। मैंने भी तो उन्हीसे कहा है, आपसे तो नही कहा।' उन अध्यापकने आँखें तरेरते हुए कहा।

ओरीजिनल कापी देखी गयी, लेकिन वह तो नदारद।

अधिकारियोंने कहा कि 'दूसरी कापीके हस्ताक्षरोंको देखकर सत्यासत्यका निर्णय देंगे।' किन्तु दूसरी कापीपर तो हस्ताक्षर ही नहीं थे। द्वेष रखनेवालोंका दाव लग गया। किसीने मामला 'एँटी करपशन्' तक पहुँचा दिया। तहकीकातोंका ताँता शुरू हो गया। वायुकी लहरोंपर सवार खबर एक कोनेसे दूसरे कोनेतक फैल गयी।

अधिकारियोने प्रधानाध्यापकजीसे 'मेडिकल लीव' की अवधिमें वेतन देनेका जवाब तलव किया तो अध्यापक महोदयने वेतन देनेका प्रमाण माँगा, पक्षी वाज और बहेलियेके बीचमें था।

प्रधानाध्यापकजीने उन अध्यापकको नाना प्रकारसे समझाया—'सोचो''', मैंने तुम्हारे साथ क्या बुराई की। क्या संकटापन्न अवस्थामें तुम्हें वेतन दे देना अपकार करना है? मैं वृद्ध हूँ, ब्राह्मण हूँ, मेरे जीवनभरके इतिहासमें ऐसा कलङ्कपूर्ण काम नही मिलेगा। मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि यह काम तुम्हारा नहीं है। तुम्हारे तो कन्धेपर रखकर बन्दूक चलायी गयी है।' यों कहते हुए उन्होंने अपने सिरकी टोपी उतारकर उसके पैरोंमें डाल दी और स्वयं भी अचेत हो वहीं लुढ़क पड़े। पर पाषाण भी कही पिघलते है?

'मैं दूध-पीता बच्चा नही, सेरभर आटा रोज उदरस्थ करता हूँ। उपदेश अपने पास रखिये और अपनी करनीका फल भोगिये।'

प्रधानाध्यापकजीने तब अपने इष्टदेवका कातर स्मरण किया—'प्रभो! उसे बुद्धि दो, उस बेगुनाहकी ओटमें शिकार खेला जा रहा है।'

तब एक दिन न जाने कैसे वह खोयी हुई ओरिजिनल कापी, जिसमें अध्यापकके हस्ताक्षर थे, दफ्तरमें मिल गयी। उच्चाधिकारियोंने प्रधानाध्यापकजीसे क्षमा माँगी और हितैषियोंने उन्हें प्रतिष्ठापर आघात करनेके अपराधमें अध्यापकपर कानूनी कार्यवाही करनेकी सलाह दी।

'अँधेरी रात तो तारागणको सुन्दर बनाती है। बेटेके साथ बाप भी बहक जाय तो गङ्गाका जल मीठा कैसे रहेगा?' वे बोले।

एक दिन लोगोंने सुना, उक्त अध्यापक महोदयका मस्तिष्क विकृत हो गया है। सिर मुँडवा लिया है। पागलों-सा प्रलाप करते है। घरके सामानको बाँटते फिरते है। बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट भी कर दिया है। प्रधानाध्यापकजीको पता लगा तो तुरन्त वहाँ पहुँचे और सारे बाँटे सामानको पुनः एकत्रित कर तालेमें बन्द किया और अध्यापक महोदयको अपने खर्चसे आगराके मानसिक चिकित्सालयमें प्रवेश कराया। दो-तीन माहके बाद वे महाशय जब वहाँसे स्वस्थ होकर घर पधारे तो अपने पूर्वकर्मोंपर अत्यधिक पश्चात्ताप किया और तत्पश्चात् क्षमा माँगी।

'मेरे ही कर्मोंका प्रतिफल होगा भैया, नहीं तो कोई किसीको न दुःख देता है न सुख। अपने ही पूर्वकृत कर्म अच्छी-बुरी सृष्टिका निर्माण करते हैं—दूसरा तो कोई निमित्त बनता है।' हलाहल पीकर भी शंकर निरुद्वेग थे।

उमा सन्त की इहइ बड़ाई। मन्द करत जो करइ भलाई॥

—गोपालकृष्ण जिंदल



भगवत्कथासे प्रेतोद्धार

अनेक प्रकारकी विचित्रताओंसे भरा हुआ यह विशाल विश्व उस लीलामय प्रभुका एक इन्द्रजाल ही है। दिन-रात आँखोके सामने होनेवाली उनकी अद्‌भुत लीलाओंको देखते हुए भी हमारी आँखे नही खुलतीं, उस प्रभुकी सत्ता एवं उसके सनातन विधानोंपर आस्था नही होती, विश्वास नही होता। फलतः, हम स्वेच्छाचारितावश नीतिपथसे विमुख हो अपना जीवन जन्म-जन्मान्तरके लिये घोर सकटमे डाल लेते है। प्रभुकी विचित्र लीलाओका प्रत्यक्ष अनुभव कर नीचे कुछ पक्तियाँ 'कल्याण'के पाठको, विशेषकर उन महानुभावोंके ध्यानाकर्षित करनेके लिये उपस्थित की जाती है, जिन्हें प्रभु अथवा उनकी लीलाओंपर कतई विश्वास नही होता।

घटना पिछले चैत्रसे श्रावणके अन्तर्गतकी है। मेरे परिवारका नियम है कि प्रतिदिन संध्या-समय बच्चे-बूढ़े एक साथ बैठकर प्रार्थना करते है। बादमें रामायण, भागवत आदि किसी-न-किसी ग्रन्थकी कथा भी प्राय. होती है, जिसे मेरे पूज्य वृद्ध पिताजी तथा कुछ अन्य श्रद्धालु नर-नारी भी सुना करते है। एक दिन प्रार्थना समाप्त होते ही मेरी ग्यारह सालकी बच्ची जोरोसे रोने लगी। हमलोगोके बहुत समझानेपर भी चुप नही होती थी। मैंने रंजमे उसे बहुत डाँटा। फिर तो वह बिल्कुल चुप हो गयी और पूछनेपर कि 'क्यों रो रही

थी ?' उसने कहा—'कहाँ रोती थी ?' फिर उसे रामायण पढ़नेका आदेश देकर (क्योंकि उसे नित्य रामायण ही पढ़ायी जाती थी) मैं कुछ स्वाध्यायमें लग गया। रामायण पढ़नेके सिलसिलेमें ही, कुछ देर बाद वह आकर मेरे पूज्य पिताजीसे रोती बाहर रास्तेकी ओर इशारा कर कहने लगी—'बाबा, देखिये, यह वहांपर खड़ी औरत मुझे पढ़नेसे मना करती है, उसे मारिये न !' मैं यह सुनकर तुरन्त वहाँ गया। देखा, रास्तेपर कोई औरत कहीं न थी। आश्चर्य हुआ। फिर उसे ले जाकर कमरे में बैठाया जहाँ पूज्य पिताजीको रामचरितमानसकी कथा सुना रहा था। यो तो बच्चीको कथा सुननेका शौक नहीं। अगर कभी जबरन् बैठाया भी तो वह सो जाती या वहांसे भाग जाया करती, परन्तु आज ऐसी बात नहीं थीं। आज वह सावधानीसे पालथी लगा कथा सुन रही थी। मैंने सशंक हो बीचमें ही बच्चीसे (क्योंकि एक बार दो-तीन मास पूर्व रात्रिमें सुप्तावस्थामें ही वह अनायास रोने-चिल्लाने लगी, तो घरवालोंने किसी झाड़-फूंकवालेको बुलाकर दिखाया था) पूछा—'तुम कौन हो ? कहाँ रहती हो ? कहांसे, किसलिये आयी हो ?' तो उसने उत्तर दिया—'मैं यही पासमें ही रहती हूँ, बहुत दूरसे अभी आयी हूँ, एक जगह कथा सुनने गयी थी, वहाँ अच्छी कथा नहीं हो रही थी। अतः यहाँ सुनने चली आयी।' 'फिर कभी आयेगी ?' मेरे प्रश्न करनेपर उसने उत्तर दिया—'एक दिन और आऊँगी।' मैंने कहा—'जब भागवतकी कथा होगी, तब आना।' फिर मैं कथा कहने लगा और समाप्त होनेपर मैंने कहा—'अब कथा समाप्त हो गयी।'

तो, 'अब जाऊँगी'—वह बोली। मैंने कहा—'जाओ।' बच्ची फुर्तीसे उठकर चल पड़ी। मैंने दो लड़कोंको पीछेसे देखनेको भेजा कि 'वह कहाँ जाती है?' बच्ची राहपर कुछ दूर जा, फिर लौट आयी। मैने उसके आते ही पूछा—'बच्ची, कहाँ थी?' 'घरपर सोयी तो थी!'—उसने कहा! अब वह प्रकृतिस्थ थी। धीरे-धीरे ये बातें सबोंको भूल गयी।

× × ×

दो महीने बाद ज्येष्ठका पुरुषोत्तम मास आया। महीनेभरके लिये शामको भागवतकी कथाका आयोजन किया। दो-तीन ही दिन कथारम्भके हुए थे कि प्रार्थनाके बाद बच्चीको एकाएक मूर्च्छा आ गयी। होश आनेपर पूछने पता चला कि वही 'प्रेतात्मा' वादेके मुताबिक भागवतकी कथा सुनने आयी है। महीनेभर कथा चलेगी, यह जानकर नियमित रूपसे वह बच्चीके माध्यमसे (मूर्च्छा लगकर) आने भी लगी। दो ही दिनों बाद यह आश्चर्यजनक खबर घर-घरमें फैल गयी। प्रार्थना समाप्त हुई कि बच्ची बेहोश! फिर क्षणभरमें होश दुरुस्त! और बच्ची शान्त हो कथा सुननेके लिये बैठ जाती। यह तमाशा देखनेके लिये सायंकाल मेरे दरवाजेपर भीड़ लग जाती थी, जो मुझे अखरने लगी। कथा-समाप्तिके बाद दिनोदिन कुछ समयतक मेरी उसके साथ बातें हुआ करतीं, जिसमें उसका नाम-पता, उसे किस प्रकार यह योनि मिली, रहन-सहन, उसके संगी-साथी कथा-श्रवणकी लगन आदि बातोंकी जानकारी मिली। मैने तो तब दाँतों अँगुली काटी, जब उसके द्वारा यह मालूम हुआ कि मेरा सद्यःप्रसूत शिशु और उसकी माँ, जो सात वर्ष पहले ही

एक साथ चल बसे थे तथा मेरा ज्येष्ठ पुत्र जो बीस वर्षकी कच्ची उम्रमें ही अपनी नवविवाहिता पत्नीको छोड़ गत वर्ष आश्विनमें अकस्मात् सर्पदंशसे चल बसा था—सब-के-सब साथ-साथ रहते थे। धीरे-धीरे वे सब भी कथामें सम्मिलित होने लगे। विशेषता यह थी कि उन लोगोंकी सम्मतिसे ही कथाके अतिरिक्त समयमें स्मरणमात्रसे ही उनके आने पर बच्चीके माध्यमसे घंटों अलग-अलग सबोंसे बातें हुआ करती थी और जीवित लोगोंकी तरह क्रमशः उनसे मेरी आत्मीयता बढ़ने लगी। लोगोंका हंगामा और बच्चीके शारीरिक कष्टको देख मैंने उन (मृतात्माओं) से यह अभिलाषा प्रकट की कि कथा सुननेका वे कोई दूसरा उपाय सोचें, जिससे बच्चीको किसी प्रकारका कष्ट न हो और जन-साधारणकी भी भीड़ न लगे। इसपर उनके इच्छानुसार अलग एक आसनका प्रबन्ध रोज किया जाने लगा, जहाँ वे अब बच्चीको बिना मूर्च्छित किये ही आकर कथा सुनने लगीं। हाँ, बच्ची उन्हें साक्षात् देखा करती और बातें भी कर लेती थी।

इस प्रकार लगभग डेढ़ माहतक कथा चलती रही और उन प्रेतात्माओंका नियमित रूपसे कथा-श्रवण भी चलता रहा। कभी-कभी बच्चीके माध्यमसे वे बहुत रोने लगती और प्रेत-योनिसे अपने उद्धारके लिये प्रार्थना करती। मेरे आश्वासन देनेपर चुप हो जाती। इस प्रसङ्गमें काशीके एक सुप्रसिद्ध महात्मासे पत्रद्वारा इनके उद्धारका उपाय पूछा तो उत्तर मिला—

देहि पिण्डं गयां गत्वा वि[illegible]थवा पुनः।

तथा—

विन्ध्यक्षेत्रस्य मातृभ्योऽथवा भक्त्या समर्पय ।
जीवितानां व्यसूनां वा विश्वनाथः परा गतिः ॥

अन्ततोगत्वा मैंने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि नवरात्रके अवसरपर इन्हें ले जाकर काशी विश्वनाथजीकी शरणमें सौंप दूंगा । पूछनेपर उनकी सहर्ष स्वीकृति भी मिल गयी । संयोगवश मुझे जरूरी कार्यवश पटनाकी ओर जाना पड़ा, वहाँ चार-पाँच दिन ठहरा । गङ्गा-स्नान नित्य करता था । मैंने सोचा, शास्त्रोंमें श्राद्ध-तर्पणादिके करनेसे प्रेत-पितरोंकी तृप्ति होने की बात लिखी है । इन प्रेतात्माओंके कथनानुसार इन्हें खाने-पीने आदि बातोंमें कष्ट उठाने पड़ते हैं, अतः क्यों न इनके नामसे दो-चार जलाञ्जलि दे दूं ? अतः ३-४ दिनोतक नित्य उनके नामसे मैंने गङ्गामे तर्पण किया । बादमें घर लौटनेपर उन लोगोंसे अलग-अलग जिज्ञासा करनेपर पता चला कि इन चार दिनोंमें उन्हे कोई कष्ट नही हुआ, बल्कि किसी आज्ञात शक्तिके द्वारा एक सुवर्णकी थालीमें नित्य भोजनके लिये मेवे-मिष्ठान्न उन्हे मिलते थे और खा-पी लेनेके बाद थाली जहाँकी तहाँ चली जाती थी । इस तरह प्रेतात्माओंसे प्रत्यक्ष सुन और अनुभव कर पारलौकिक विषयोंके सम्बन्धमें शास्त्रीय वचनोंकी सत्यता अक्षरशः प्रमाणित हुई और उनके प्रति मेरी आस्था और भी अधिकाधिक दृढ़ हो गयी ।

एक दिन बातचीतके सिलसिलेमे उनमेसे एकने प्रसन्नता पूर्वक कहा—"भाईजी! आज देवदूतने कहा है 'कि तुमलोगोंक

यहाँ रहने की अवधि पूरी हो रही है। अब दो-चार दिन और कथा-पुराण सुन लो, फिर यहाँसे चल देना है। कुछ एकको तो भादोंके अन्ततक जन्म ले लेना है और कुछ दो वर्ष बाद इस योनिसे मुक्त होगे; किन्तु यहाँ किसीको रहना न होगा।' यह सुनकर शीघ्र हमने योजना बना उन्हें 'श्रीमद्भागवत-सप्ताह' सुनाना आरम्भ किया। इस अवसर पर कितनी ही नयी बातें देखनेको मिलीं। जैसे अबतक कथामें न सम्मिलित होनेवाले मेरे विंशतिवर्षीय दिवंगत पुत्रका आना तथा मुझसे एवं पिता जीसे मिलकर बच्चीके माध्यमसे बातें करना, प्राण-त्यागका कारण बताना, जीवनकालकी अन्य आवश्यक बातें, अन्य व्यक्तियोंद्वारा जाँचमें पूछे गये प्रश्नोके उत्तर देकर उनके सन्देह को दूरकर उन्हें आश्चर्यमें डाल देना। किसी अन्य प्रेतात्मा-द्वारा कथाभूमिको मिनटोंमें लीप-पोत देना एवं अपनी एक खास विचित्र भाषाद्वारा बातें करना तथा बिना बुलाये ही घर की औरतोंसे बातें करना, आदि। सबसे बढ़कर मार्केकी बात यह हुई कि इस बीच मेरा सद्य प्रसूत मृत शिशु, जिसका सातवाँ वर्ष था, अब बच्चीके माध्यमसे आने लगा और विभिन्न प्रकारकी अद्‌भुत बाललीलाएँ करता हुआ प्रायः सदा ही घरमें रहने लगा। प्रायः डेढ़ महीने यह क्रम चला। अब बच्चीका अपना व्यवहार-खाने-पीने, रहने-सोने, नहाने-पहनने आदिका ढंग ही बदल गया। बिल्कुल मासूम बच्चेकी तरह उसका व्यवहार सबोंके साथ होता। मैं भी उसे 'बच्चा बाबू' कहकर पुकारता, लाड़-प्यार करता, गोद लेता, जो मेरे लिये एक नवीनता थी। मुझमें विचित्र ममत्व आ गया। भागवती कथा

ब्रह्माके मोहभङ्ग-प्रसङ्गमें कृष्णमय अपने बच्चोंके प्रति गोप-गोपियोंकी उत्तरोत्तर बढ़ती प्रीति एवं गुरु सान्दीपनि तथा माता देवकीकी मृत पुत्रोको पाकर बढ़ते हुए प्रेमकी कथा चरितार्थ होनेकी याद हो आयी।

'बच्चा बाबूसे बहुत-सी अद्‌भुत बातें मालूम हुईं। १०-२० वर्ष पूर्व मृत कितने ही लोगोंका प्रेत-योनिमें अबतक रहनेकी बात एवं उनके जीवन-कालकी रहन-सहन, स्वभाव, आचरणका हूबहू प्रतिरूप बताना। भागवत-महाभारतकी कितनी ही रहस्यमयी कथाएँ सुनाना। श्रीकृष्णके बांसुरी-वादनकी भाव-भगिमा तोतली बोलीमें गाते हुए प्रस्तुत करना और बाँसुरीकी ताल-मात्राके साथ गाना सगीत मास्टरकी तरह होता था, जिससे मेरी बच्ची तो सर्वथा अनभिज्ञ ही थी। इसके अतिरिक्त इस संक्रमण-कालमें बच्चीकी सारी चेष्टाएँ लड़के-सी होतीं। दौड़ना, खेलना, कूदना, उन्हीं-सा पोशाक पहनना और बाहर दूर-दूर किसीके साथ जाना, इत्यादि।

बच्चा बाबूकी यह करामात तो श्रावणतक चली। किन्तु सप्ताहकथा समाप्त हानेपर उन प्रेतात्माओंके आग्रहसे मुझे परिवारके साथ जगज्जननी जानकीके दर्शनार्थ एक दिन सीतामढ़ी जाना पड़ा। वे भी गयीं और वहाँ भी क्रमशः उनका परिचय पाकर तीर्थविधिसे दर्शनादि कर शामको घर वापस आया। आज ही उन आत्माओंको यहाँसे कुछ दिनोंके लिये उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जाना था। रातके नौ बजते ही वे बारी-बारीसे मेरे पास बच्चीके माध्यमसे आ-आकर पैर छू प्रणामकर चलने लगी। मैंने पूछा—'अभी इतना पहले ही

क्यों जा रही है ?' उन्होने कहा—'११ बजेतक चला जाना है और देवदूत रथ लेकर खड़े हैं. जल्दी चलनेको कह रहे हैं।' फिर वे घरके अन्य व्यक्तियोसे मिलकर चले गये। 'बच्चा बाबू'से पता चला कि जाते समय वे आत्माएँ हमसे बिछुड़कर बहुत रो रही थी। इधर मेरा भी हृदय करुणासे भर आया। आंखसे आंसू गिर पड़े। इस अवसरपर 'मेरा बच्चा बाबू' स्व० ज्येष्ठ पुत्र और उसके साथी अपनी प्रेतयोनिकी पत्नीके साथ नही गये। कारण, एक तो ज्येष्ठ पुत्र बीमार था, दूसरे उसकी पत्नीके प्रसव भी हुआ था, जिसमे जन्मोत्सव मनाने मेरी पत्नी भी आयी थी। 'बच्चा बाबू'से तो प्रतिदिनकी बातें मालूम होती ही थी, पत्नीसे भी वस्तुस्थितिका यथावत् परिचय मिला। अपने स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्रकी पत्नी और प्रसवकी बात सुन आश्चर्यान्वित होनेपर अपनी पत्नीसे मालूम हुआ कि दो वर्षोंतक उसे (स्व० पुत्रको) अकेले रहनेमें कष्ट होगा, अत: आग्रहपूर्वक मैंने ही विवाह करवा दिया है। फिर प्रेतयोनिमें सद्यः गर्भ रहता है और एक मासके अन्दर ही प्रसव भी। प्रेतशरीरकी आकृतिके विषयमें पूछनेपर पता चला कि पृष्ठभाग खाली और मुंहका छिद्र सुईके छिद्र-इतना होता है। ईश्वरीय नियमसे बद्ध होनेके कारण चारों ओर अन्न-जलकी प्रचुरता होनेपर भी इच्छानुसार नहीं मिल पाता। गन्दे स्थानोंका जल तथा मारे-मारे फिरनेपर गन्दे स्थानों या दूकानोंमें फैले अन्नोंका रस मिल जाता है जो पर्याप्त नहीं होता। किन्तु जबसे भागवती कथाका इन्हें सुअवसर मिला तबसे सारी असुविधाएँ दूर होती गयी। मुझे भी उनकी

उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रसन्नताका अनुभव होता रहा। उन्ही लोगोसे यह भी विदित हुआ कि ठीक इहलोककी तरह गाँवके २०-२५ हाथ ऊपर अन्तरिक्षमें प्रेतलोक भी है। उनके भी गाँव-नगर बसे है। उनमें भी नौकर, चाकर, वैद्य-डाक्टर, मूर्ख-पण्डित, साधु-वैरागी आदि सभी हैं। जैसा मनुष्यलोकमें होता है; क्योंकि कारणविशेषसे ही तो प्रेतयोनिमें जाते हैं और यह भी अनुभव किया कि अकाल-मृत्युसे या सर्पदंश, अग्निदाह, वृक्षपातादिसे मरनेपर ही लोग प्रेत होते हैं—ऐसी भी बात नही। बल्कि समयपर बिना किसी विघ्न-बाधाके मरने या विधिवत् अन्त्येष्टि क्रिया करनेपर भी लोग प्रेतयोनिमे निश्चित अवधितक वास करते है। अपने-अपने कर्मानुसार वहाँ भी सुख-दुखसे जीवन जाता है। जीवनकालमें जो धर्मात्मा, आचारनिष्ठ, विद्वान् होते हैं, प्रेतयोनिमें उनकी वैसी ही स्थिति होती है और भगवान्‌की ओरसे सुख-भोगकी, घर-महल, खान-पान आदिकी सारी सुव्यवस्था यहाँकी अपेक्षा अधिक कर दी जाती है। जो यहाँ कर्महीन, पापात्मा, दुराचारी रहते हैं, वे वहाँ भी भूखे-प्यासे मारे-मारे फिरते हैं। गन्दे-सूने खडहरों, पेड़की डालियोंपर निवास करते है। पशुयोनिके प्रेतोकी स्थिति धरतीके नीचे या ऊपर ही हड्डीके रूपमे रहती है, जब-तक उन्हे रहना है; क्योंकि उनका तो दाह-संस्कार होता नहीं। प्रेतात्माओने अपनी-अपनी स्थिति एवं घर-द्वार आदिके विषय में भी पूरा विवरण दिया जो यहाँ विस्तारभयसे नहीं दिया जा सकता।

श्रावण (१९६१) में मैं बीमार पड़ा। महीनों रोग-शय्या-

पर पड़ा रहा। इस दरमियान प्रेतात्माएँ बराबर आकर मेरी सेवा अपने निश्चित माध्यमसे कर जाया करतीं। भाद्र कृष्ण अष्टमीसे शुक्ल चतुर्थीके भीतर मेरी दिवंगता पत्नीका मुजफ्फरपुरके 'कोरलहिया' ग्राममें कन्याके रूपमें तथा मेरी एक ग्रामीण बहनका सीतामढ़ीके पास भवदेवपुरमें ब्राह्मणकुल तथा उसकी माताका शूद्रकुलमें कहीं जन्म हो गया। ऐसी सूचना उन्ही लोगोंसे मिली। जाँच करनेपर कोरलहियाकी बात सत्य निकली। भवदेवपुरकी जाँच न कर सका।

श्रीमद्भागवतकथाकी महिमा प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई। इसीके कारण प्रेतात्माओंसे परिचय मिला, उनका उद्धार हुआ तथा कितनी ही अद्भुत बातोंकी जानकारी हुई। मुझे तो उस अवसरपर बराबर गोकर्ण और धुन्धुकारीकी स्मृति आती रहती थी। आश्चर्य यह होता है कि वायवीय शरीर होनेके नाते धुन्धुकारी बाहर न बैठ सकनेके कारण बाँसके छिद्रमें बैठता था, पर यहाँ ये लोग बाहर ही बैठा करते थे। इतना जरूर था कि देवयोनि होनेके कारण जमीनसे इनका स्पर्श न होता था।

नियमितरूपसे कथा सुननेवाले प्रेतात्माओंके नाम ये हैं—मेरी पत्नी (रामकुमारी), मेरे पुत्रद्वय (विनयकुमार, विजयकुमार), रामइकबाल (विनयका साथी जिन दोनोंका एक-डेढ़ माहके अंदरसे अभिचार-प्रयोगात्मक सर्पदंशसे मृत्यु हुई), सिकली (रामइकबालकी बहन) और सिकलीकी माँ।

इन लोगोंके द्वारा जिन प्रेतात्माओंके परिचय मिले उनके नाम ये हैं—मेरी माताजी (श्रीराजेश्वरी देवी मृत्यु १९४५),

ई०), पूज्य चाचाजी पं० श्रीसरयूप्रसाद शर्मा (मृ० १९४६), बा० जोधीसिंह (मृ० १९५२), जय झा (मृ० १९४८), जयमन्त्र झा 'घुक्कू' (मृ० १९४२), कैलाशनाथ शुक्ल चहोत्तर (रायबरेली) निवासी (मृ० १९४५), मोहनदादा बैंगना निवासी, सुभद्रा (विनयकी सहचरी) और जानकी (रामइकबालकी सहचरी)।

पूर्वोक्त प्रेतात्माओंके साथ ही इन लागोंकी भी प्रेतयोनि की अवधि पूरी हो गयी, सब-के-सब यहाँसे चले गये। उल्लिखित बातोंके अतिरिक्त भी बहुत-सी बाते ऐसी है, जिनका यहाँ समावेश ठीक नहीं जँचता। वैज्ञानिक इसका शोध करे तथा विशेष जानकारीके लिये मुझसे बातें कर सकते हैं। मुझे तो सबका सार इतना ही प्रतीत होता है कि शास्त्रीय वचन कितने अटल सत्य है, भगवत्कथा कितनी महिमामयी शक्तिशालिनी है, जिसके पानेको देवयोनिका प्राणी भी लालायित रहता है। अतः हम मानव-देहधारियोंको कल्याणार्थ अप्रमत्त हो शास्त्रीय सदाचारोंका पालन करते हुए निरन्तर भगवत्कथामृतका पान करना चाहिये।

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥

(कठोपनिषद्)

—रामकेदार शर्मा



स्वप्नके स्वरूपमें सत्य

वह वृद्ध तो था, उसके बाल भी सफेद थे, पर उसका शरीर न दुबला था, न दुर्बल। जब वह राहपर चलता, बैसाखी टेककर, गर्दन झुकाकर, धीरे धीरे चलता, जैसे किसी वस्तुको ढूढ़ रहा हो। कोई कभी उससे पूछता कि 'बाबा क्या ढूँढ रहे हो ?' तो वह उत्तर देता, 'रास्ता ढूढ़ रहा हूँ, बाबा ! रास्ता खो गया है।'

'कहाँका रास्ता ?'

'यही तो मालूम नहीं।' उसके स्वरमें निराशाकी ध्वनि रहती।

'खूब मजेमें ढूँढते जाओ, बाबा !' उत्तर सुनायी देता और उसके साथ खखारकी हँसी।

× × ×

एक चाँदनी रातको, जब कि मैं अपने मकानके बाहर बैठा नीलाकाशकी शोभा देख रहा था, उक्त वृद्ध महोदयको अपने मकानकी ओर आते देखा। रात्रिके समय उनका शुभागमन कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। निकट पहुँचने मैंने पूछा—'क्यों बाबा ! इतनी रातको कैसे आये ?' उसने उत्तर दिया, 'तुमसे कुछ कहना है।'

'इसी रातको ? कल कहते, महाराज !'

'नहीं, कलतक मैं भूल जाऊँगा। कल रातको मैंने एक सपना देखा है, वह तुमको सुनाना है।'

'अच्छा, तो आप सपना सुनाने आये हैं। मैं समझा कोई गहरी बात होगी।'

'पहले सुनो, फिर कहना गहरी है या नहीं।'

'अच्छा, तो सुनाइये।'

तब वृद्धने यों कहा—

'मैंने सपनेमें देखा कि रास्ता ढूंढ़ते-ढूंढते, जैसा कि मै प्रायः ढूंढ़ा करता हूँ, एक दिन एक गाँवमें पहुँच गया हूँ। गाँव छोटा है। उसमें रहनेवाले भी कम है। अधिकतर मकान टूटे-फूटे हैं। बहुतोंपर न छत है, न छप्पर; दीवारोंमें कहीं-कहीं दरवाजे लगे है। इस गाँवमें बहुत देरतक मै भटकता फिरा। मुझको देखते ही लोग जान जाते थे कि मै वहाँका रहनेवाला नही हूँ। मुझको सन्देहयुक्त दृष्टिसे देखते थे। कभी-कभी कोई पूछता भी था कि 'मैं कहाँ जाना चाहता हूँ, किससे मिलना चाहता हूँ।' 'मै शहरकी तरफ जाना चाहता हूँ,' कहनेपर वह मुझे राह तो बता देता, पर चलते-चलते मैं फिर भटक जाता। ऐसे ही घूमते-घूमते मै एक नदीके किनारे जा पहुँचा। नदी छोटी थी, बहुत गहरी भी नहीं। मैं उस पार जाना चाहता था, पर बहाव इतना तेज था कि नदीमें उतरनेका साहस नहीं हुआ। वहाँपर एक आदमी मिला। उसने पूछा, 'आप कहाँ जाना चाहते हैं?'

मैंने कहा, 'मै जहाँ जाना चाहता हूँ, वहाँका नाम भूल गया हूँ। मुझको युगल-मन्दिरका रास्ता बता देनेपर, वहाँ जाकर मेरे जानेका स्थान कहाँ है, पता लगा लूँगा।'

उसने कुछ नहीं कहा; हँसकर वह चुपचाप चला गया। मैं फिर इधर-उधर फिरता रहा। घूमते-घूमते ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ केवल दो-एक मकान थे और चारों तरफ खुला हुआ था। वहाँ खड़े-खड़े सोच रहा था कि किधर जाऊँ। इतनेमें एक जीप-गाड़ी आती हुई दिखाई दी। थोड़ी देरमें वह आकर मेरे ही पास खड़ी हो गयी और बिना किसीसे कुछ कहे मैं तत्काल उसपर बैठ गया। तब मैंने गाड़ीपर बैठे लोगोंको देखा, तो उनमें एक सज्जन जान-पहिचानके मिले। वे मुसकरा रहे थे। मुझसे पूछा—'कहाँ ?'

मैंने उत्तर दिया,—'युगल-मन्दिर।'

कहा—'ठीक है।'............गाड़ी चल दी।...आँख खुल गयी। बृद्ध महाराज थोड़ी देर चुप बैठे रहे; फिर मुझसे पूछा 'क्या समझे ?'

मैंने कहा—'यह कि आप जैसे जाग्रदवस्थामें पागलकी तरह मारे-मारे इधर-उधर फिरा करते है, स्वप्नावस्थामें भी वैसे ही मारे-मारे फिरते रहे।' उन्होने कहा—'नहीं समझे' सुनो। वह टूटे-फूटे मकानोंवाला गाँव इस असार संसारका ही प्रतीक है, जिसमें प्राणी-पदार्थ सब अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं, परन्तु इसमें मनुष्य जन्म लेता है, इसके काम-धन्धेमें फँसा

रहता है, धन-सम्पत्ति उपार्जन करता है। खूब दौड़धूप करता है और अपनी समझसे सुखमय जीवन व्यतीत करता है। परन्तु मनुष्य-जीवनका क्या उद्देश्य है, उसे कहाँ जाना है—सब भूल जाता है। 'मोहितो मोहजालेन पुत्रदारगृहादिषु।' इसी तरह उसके दिन कटते जाते हैं। माया-नदीको पारकर कहीं जा नहीं सकता है। पर भगवान्की कृपासे एक दिन उसकी आँखे खुलती हैं। वह देखता है—

सुकृतं न कृतं किञ्चिद् दुष्कृतं च कृतं मया।

तब वह मन-ही-मन भगवान्को स्मरण करने लगता है और किसीकी खोजमे रहता है जो उसे जीवनके सन्मार्गका पता बता दे। सौभाग्यवश एक दिन उसको एक पथ-प्रदर्शक मिल जाता है, जो उसको मनुष्य-जीवन सफल बनानेके राज-पथका निर्देश कर देता है। वह धन्य हो जाता है।

फिर थोड़ी देर चुप रहनेके बाद उन ज्ञानवृद्ध महोदयने पूछा—'क्या समझे ?'

मैंने उत्तर दिया—'अबतक मैं आपको जो कुछ समझता था उसके लिये क्षमा कीजिये और आज आपके चरण छूकर प्रणाम करता हूँ, कृपया ग्रहण कीजिये।'

(आचार्य) श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय, एम० ए०



सच्ची सहानुभूति

हमलोग लाहौर गये थे। उस समय पाकिस्तान नहीं बना था। तीन मित्र तथा उनमेंसे एककी धर्मपत्नी मनोरमा देवी भी हमारे साथ गयी थी। एक दिन हमलोग अच्छी तरह ऊनी कपड़े पहन-ओढ़कर प्रातःकाल घूमने निकले। जाड़ेकी मौसिम थी, फिर पंजाबका जाड़ा। टहलकर वापस लौट रहे थे कि देखा, सड़कके किनारे एक पेड़के नीचे एक तरुणी स्त्री अपने ३-४ सालके बच्चेको छातीसे चिपकाये बैठी है। बच्चेके बदन पर एक भी कपड़ा नहीं है और वह स्त्री एक फटी-सी मैली साड़ी लपेटे है, उसीसे वह बच्चेको ढकनेकी कोशिश कर रही है। दोनों ठिठुर रहे है, उनके बदन काँप रहे हैं।

इस दृश्यको देखते ही मनोरमाबाई ठहर गयी और तुरन्त उस बाईके पास जा पहुँची। हमलोग भी साथ-साथ गये—यद्यपि हमारे मनमें कोई खास सहानुभूति नहीं थीं, वर हमारे एक साथी मित्रने तो कहा—'क्यों वक्त बर्बाद करते हो, दुनियामें सभी तरहके लोग हैं।' मनोरमा देवीने उसके पास पहुँचकर स्नेहसे पूछा—'बहन! तुम्हारा घर कहाँ है, तुम्हारे पास कपड़े नहीं है?' स्नेहभरी आवाज सुनते ही वह फुफकारकर रो पड़ी, वोली—'घर कपड़े होते तो यहाँ पेड़के नीचे जाड़ेमें क्यो पड़ी रहती। मेरे पति मैट्रिक पास थे। एक जगह अस्सी रुपये महीनेकी नौकरी करते थे। उन्हे टी० वी० हो गयी। तीन साल बीमार रहकर वे मेरे दुर्भाग्यसे मर गये। उनकी बीमारीमे कपड़े-लत्ते, बरतन सब समाप्त हो गये। मैं और बच्चा—जैसे बैठे है, वैसे ही बच रहे। किरायेके मकानमें रहते थे। उसने निकाल दिया! छः-सात महीने हुए, इसी पेड़के नीचे गुजर करती हूँ। दिनमे बच्चे को लिये मजदूरी कुछ कर लेती हूँ, उसीसे पेटमे डालनेको कुछ मिल जाता है। बीचमे बीमार पड़ गयी थी, बच्चा भी बीमार हो गया। अस्पतालपे गयी, पर वहाँ भी कोई दवा-दारू नही मिली। भगवान्‌के भरोसे यहाँ आकर पड़ गयी। एक दिन एक दयालु सज्जनने आकर कुछ पथ्य तथा दवाका इन्तजाम कर दिया। दोनोकी तबीयत तो कुछ ठीक हुई। पर अभीतक कमजोरीके मारे मै मजदूरीपर नही जा पायी। कपड़े कहाँसे लाती।

हमलोगोंके मनमें तो आयी कपड़ा दें, पर देते कहाँसे। इसी बीच कुछ बुदाबाँदी शुरू हो गयी थी। हमलोग लाचार थे। पर मनोरमा देवीने अपना कम्बल, जो वे ओढ़े थीं, तुरन्त उतारकर उसको ओढ़ा दिया और दूसरी ओर मुंह करके अपना स्वेटर उतारा और उसे देती हुई बोली—'बहन! इसे पहन लो और इसीमें बच्चेको लेकर छातीसे चिपका लो। ऊपरसे कम्बल ओढ़ लो,' वह सब इतनी जल्दी हो गया कि हमलोग देखते ही रह गये। मनोरमाके पति श्रीकुन्दनलालजीने प्रसन्न होकर कहा—'मेरे भी मनमें तो आयी थी कि कपड़ा दूँ, पर सोचा कहाँसे दूं। साथ तो लाया नहीं था। कम्बल, स्वेटर तो मेरे शरीरपर भी थे, पर मुझे यह बात याद ही नहीं आयी। तुमने बहुत अच्छा किया।' कम्बल-स्वेटर तो हम सभीके पास थे, पर उनकी तरफ ध्यान गया तो केवल मनोरमाजीका ही हममें किसीके मनमें यह बात नहीं आयी। वह स्त्री तो कृतज्ञतासे दब गयी। इतना ही बोल सकी। फिर तो आँसुओंकी झड़ी लग गयी। 'तुमने बहन! हमलोगोंकी जिंदगी दी है—भगवान् तुमको सदा अनन्त सुख दें।'

—रोशनलाल कपूर



अभक्ष्यभक्षण-त्यागसे मृत्युमुखसे बचना

मेरी आयु उस समय लगभग १९ वर्षकी रही होगी। १९३२ ई० की बात है। मेरी दादी श्रीमती चुन्नाकुंअरि, जिनकी आयु लगभग ७५ वर्षकी होगी, अधिक बीमार हो गयी। उनकी चिकित्सा मेरे गुरु आयुर्वेदाचार्य पं० मूलचन्दजी शास्त्री राजवैद्य, निवासी गोलागोकरणनाथजी कर रहे थे। चिकित्सा करते गुरुजीको लगभग सात-आठ दिन हो गये, किन्तु लाभकी अपेक्षा हानि होती गयी। हताश होकर गुरुजीने मेरी मातासे और मुझसे कहा कि 'इनका बचना असम्भव है,

औषधसे कोई लाभ नहीं पहुँच रहा है, भगवान् ही रक्षक हैं। इसलिये इनका मन जिन-जिनको देखने-मिलनेका हो, उन्हें दिखा दो।'

यह सुनकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। किन्तु धैर्य धारण करके मैं शुद्धचित्तसे देवालयमें गया और वहाँ भगवान् श्रीराधाकृष्णके सामने मैंने यह प्रतिज्ञा की कि 'यदि अशुभ चीजोंके त्यागसे आप प्रसन्न होते है तो मैं आजसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मेरी दादी स्वस्थ हो जायँ तो आजसे मांस-मछली खाना छोड़ता हूँ और अपने बाजारमें भी मांस-मछली नहीं बिकने दूंगा।'

मैं घर लौट आया और उसी-शामसे मेरी दादीका त्रिदोष ज्वर कम होने लगा। एक सप्ताहमें वे एकदम ठीक हो गयीं। गुरुजीने कहा कि 'अब तो बिना ओषधि दिये भी रोगीकी दशा ठीक है।' तबसे मै इस प्रतिज्ञाका पूर्णरूपसे पालन करता चला आ रहा हूँ। मैंने इतिहासमें पढ़ा था कि राणा साँगापर विजय प्राप्त करनेके हेतु बाबरने नमाज पढ़ते समय खुदासे यह प्रार्थना की कि 'मैं यदि राणा साँगापर विजय प्राप्त कर लूं तो मैं कभी शराब नही पीऊँगा।' और बाबर राणा साँगापर विजयी हुआ। इतिहासकी इस स्मृतिने मुझे मांस-मछली-त्यागके लिये प्रेरित किया था।

—राजर्षि डा० कुंवर घनश्यामनारायणसिंह 'श्याम'



जिसकी चीज, उसीको अर्पण

बम्बईमें अनाजके एक थोक व्यापारीके यहाँ उगाहीके कामपर नौकरी करनेवाले पोपटलालको डेढ़ सौ रुपये वेतन मिलता था। बाल-बच्चे देशमे बूढ़े माता-पिताके पास रहते। पोपटलाल बम्बईमें एक बासेमें भोजन करता और रातको गद्दीमें सो रहता।

थोक अनाज और किरानेके व्यापारियोंके यहाँ बम्बईमें नमूने साफ करके उन्हें बोरोंमें भरनेके लिये अधिकांशमें स्त्रियाँ रक्खी जाती हैं और उन्हे 'पालावाली' कहते है।

पोपटलालकी गद्दीमें पालावाली जानकीबाई पचास-पचपन वर्षकी एक विधवा स्त्री थी। कुटुम्बमें वह अकेली ही थी।

भारत सरकारके इनामी बाण्ड पहले-पहले निकले तब पोपटलालकी गद्दीके सभी लोगोंने अपने थोड़े वेतनमेंसे कुछ बचाकर पाँच रुपयेका एक बांड खरीदने और नसीब आजमानेका निश्चय किया। पोपटलालने जानकीबाईसे पूछा— 'तुझे भी एक बाण्ड लेना है न ?'

'बहुत थोड़ी तनख्वाहमेंसे पाँच रुपये कहाँसे निकालूँ।'
'कोई आपत्ति नही, अभी पाँच रुपये मै दे देता हूँ, तुझे सुविधा हो तो मुझको लौटा देना।'

यों कहकर पोपटलाल पाँच रुपयेका एक बाण्ड जानकीबाईके लिये खरीद लाया। जानकीबाईको देने लगा। जानकीबाईने कहा—'मैं कहाँ सँभालकर रक्खूँगी, तू ही अपने पास रख।'

पोपटलालने 'यह बाण्ड मेरा और यह जानकीबाईका' यों

मन-ही-मन निर्णय करके दोनों बाण्ड अपने पास रख लिये।

फिर तो यह बात भूल गयी। लगभग डेढ़ वर्ष बीत गया। जानकीबाईने वहाँ नौकरी छोड़कर दूसरी जगह क ली और अन्तमें बीमार पड़कर वह अपने देश चली गयी पोपटलालको अपने पासके दोनों बाण्डोंमें अबतक किसीप इनाम नहीं मिला।

अन्तमें अभी-अभी इनामोंकी अन्तिम घोषणामें पोपटलाल के पासके एक बाण्डपर ढाई हजार रुपयेका इनाम मिला। व इनामके रुपये भी ले आया। इसी बीच उसे जानकीबाई या आ गयी। दोनोंमेंसे जानकीबाईका कौन-सा बाण्ड था, इ बातको याद करनेका उसने खूब प्रयत्न किया और अन्त उसके मनमें यह निश्चय हो गया कि इनाम उसके बाण्डपर मिलकर जानकीबाईवालेपर मिला है।

अजब महँगीका जमाना और डेढ़ सौ रुपयेकी छोटी-स तनख्वाह, अतः पोपटलालने निश्चय किया कि इनामकी रक वही रख लेगा। जानकीबाईने अभी उसे पाँच रुपये ही कह लौटाये हैं। फिर कौन-सा नम्बर उसका है, यह भी उसक मैंने कहाँ बताया था और जानकीबाई इस समय कहाँ है इसका भी किसको पता है? यह सब सोचनेपर भी पोपटलाल की अन्तरात्माने इसे नहीं माना।

दिन बीतते गये, त्यों-त्यों पोपटलालके मनमे घो घमासान मच गया। बुद्धि कहती है—'अरे मूर्ख! रख ले ऐसा मौका तुझे फिर कब मिलेगा?' परन्तु वहाँ तो तुरन्त ही अन्तरात्मा कराहने लगती—'जानकीबाई तुझसे अधिक गरीब है। तू मुझको—तेरी अन्तरात्माको धोखा देकर कब

ाक इन रुपयोंको पचाकर रख सकेगा।'

आखिर पोपटलालने जानकीबाईका पता लगाना शुरू किया और बड़ी मेहनतके बाद उसे खबर मिली कि जानकीबाई अपने गाँवपर है और वहाँ अपने घरके पास ही थोड़ी-सी जमीनमें धानकी खेती करके अपना काम चलाती है।

एक रविवारको खूब सबेरे पोपटलाल बम्बईकी एस-टी बसमें सवार होकर पनवेल उतर गया और दो कास पैदल चलकर जानकीबाईके गाँव पहुँच गया।

'अरे पोपट! तू, यहां मेरे गाँवमें?'

'जानकीबाई! उस बाण्डके पाँच रुपये तुमने मुझको नहीं दिये, उन्हें लेने आया हूँ।'

'पाँच रुपयेके लिये इतना बसका भाड़ा खर्च करके यहाँ आया? कैसा मूर्ख है। ले ये तेरे पाँच रुपये और चाहिये तो बसका भाड़ा भी ले ले।' जानकीबाईने पाँच रुपयेका नोट पोपटके हाथपर रक्खा और पोपटने अपनी बण्डीकी जेबमेंसे २५००) रुपये निकालकर जानकीबाईको देते हुए कहा—बसका भाड़ा तो नहीं चाहिये, लेकिन पाँच रुपये तो जरूर लेने हैं। इन पाँच रुपयोंपर तुझे २५००) का इनाम मिला है।'

जानकीबाईकी आँखोसे आश्चर्य, आभार और हर्षके आँसू ढलककर उसके झुर्री पड़े कठोर चेहरेका भिगोने लगे। (अखण्ड आनन्द)

—गोपालदास प्र० मोदी



टूटा प्रेम फिर उमड़ा

मुजफ्फरपुर जिलाकी दक्षिण दिशामें त्यागी ब्राह्मणोंका एक सुन्दर गाँव है। बाबू रामप्रसाद तथा श्यामप्रसाद नामके दो भाई थे। बड़े रामप्रसादके एक लड़का तथा छोटे श्यामप्रसादके दो लड़के थे। परस्पर दोनों भाइयोंमें अत्यन्त स्नेह था, किन्तु दोनों स्त्रियोंमें परस्पर द्वेष था। इसके फलस्वरूप महासंग्राम शुरू हो गया, मुकद्दमा चला और छोटे भाईको ग्यारह महीनेकी जेलकी सजा हो गयी।

श्यामप्रसादने बहुत प्रयत्न तथा अर्थव्यय करके केवल एक दिनके लिये छुट्टी चाही। दैवयोगसे छुट्टी मञ्जूर हो गयी। श्यामप्रसाद सीधे मुजफ्फरपुरसे घर आया। अपनी स्त्रीसे पूछा। 'आज भैयाके यहाँ भोज है। कल नूनूका (भतीजेका) यज्ञोपवीत है।' इसपर स्त्रीने अन्यमनस्क होकर पूछा—'सुननेमें आया था कि आपको ग्यारह महीनेकी जेलकी सजा हो गई है और आप जेलमें है।' इसपर श्यामप्रसादने कहा कि 'जेल में तो था ही, किन्तु नूनूका जनेऊ है, इसलिये मैंने बहुत प्रयत्न करके केवल एक दिनके लिये छुट्टी पायी है।' सुनते ही स्त्रीने कहा—'डूब क्यों नही मरते ? निमन्त्रण-तक भी नहीं है और खानेके लिये बेचैन हो, उस दुष्ट भाईके लड़केका जनेऊ देखनेके लिये रुपये खर्च करके आये हो।' इसपर श्यामप्रसादने कहा कि "सुनो, 'हम जेलसे आयेंगे, दो-

चार वर्षोंतक तेरे तथा मेरे मनमें दुःख बना रहेगा। फिर दोनोंमें मेल-जोल हो ही जायेगा। कहोगी कि 'ऐसा नहीं हो सकता' तो मैं कहूँगा 'ऐसा होगा ही; क्योंकि यही प्रकृतिका नियम है। संयोग-वियोग, प्रीति-बैर होते-मिटते रहते हैं। फिर भी हम अनेकों यज्ञ तो देखेंगे, किन्तु तुम जानती हो ही कि नूनूका यज्ञोपवीत तो फिर नहीं देख सकूँगा।"

इन दोनोंमें ये बातें हो रही थीं, ठीक इसी समय रामप्रसाद छोटे भाई श्यामप्रसादके आनेकी बात सुनकर लोगोंके कहनेपर श्यामप्रसादको भोजनके लिये बुलाने आये थे। पति-पत्नीमें बात हो रही थी, इसलिये रामप्रसाद भीतकी आड़में खड़े होकर सब सुनने लगे। भाईकी बात सुनकर वे रोने लगे और रोते-रोते अधीर होकर लपककर छोटे भाईको हृदयसे लगा लिया। जब ऊँचे स्वरमें विशेषरूपसे दोनों भाई रोने लगे, तब तो वहाँ बहुत-से नर-नारी इकट्ठे हो गये। दोनों भाइयोंको यों स्नेहसे मिलते देखकर भले मानवोंके मनमें राम और भरतका मिलाप जैसा प्रतीत हुआ। फिर रामप्रसादने भाई श्यामप्रसादको प्रेमपूर्वक भोजन कराया और यज्ञोपवीत हो जानेपर स्वयं मुजफ्फरपुर जाकर अपने पाससे रुपये लगाकर छोटे भाईको छुड़ाकर भ्रातृ-प्रेमका आदर्श दिखाया। हृदय पलटते ही प्रेम हो गया।

—पं० रामप्रसाद मिश्र, कथावाचक



बच्चोंके चरित्र-निर्माणका नमूना

घटना जनवरी सन् १९६२ की है। मैं एक दिन मेडिकल कालेजसे चारबाग लखनऊ स्टेशनपर बससे जा रहा था। उस समय प्रायः सभी विद्यालयोमें छुट्टी हो चुकी थी। अतएव सभी छात्र घर जानेकी तैयारीमें थे एवं वे भिन्न-भिन्न साधनों-द्वारा अपने घरोंकी ओर अग्रसर हो रहे थे। रास्तेमें कुछ छात्र अपने योजनानुसार बसके द्वारा भी जा रहे थे। इतनेमें अन्य छात्रोंके साथ एक लगभग सात वर्षकी बालिका भी बसपर चढ़ी, परन्तु वह कण्डक्टरसे बिना टिकट लिये ही आगे बढ़कर सीटपर बैठ गयी। प्रायः कण्डक्टर इन बच्चोंके स्थानपर जाकर उनको टिकटें देते हैं। परन्तु दैवयोगसे ऐसी घटना हुई कि कण्डक्टर भी अपने स्थानपर खड़ा रहा और वह भी अपने स्थानसे विचलित नहीं हुई, परन्तु वह पूरे रास्ते उसकी ओर देखती रही। सब लोग अपने-अपने स्थानपर

बससे उतर रहे थे। जब उस बालिकाके उतरनेका स्थान आया तो वह भी दरवाजेकी तरफ आयी तथा उसने कण्डक्टर से टिकटके लिये आग्रह किया। कडक्टर यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गया। कण्डक्टरने उससे पूछा कि 'बेटी! तुमने टिकट क्यों नहीं ली?' उसने उत्तर दिया कि 'तुम मेरी सीटपर आये ही नहीं, तो मैं क्या करती।' कण्डक्टर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा—'जाओ बेटी, इसकी मूंगफली लेकर खा लेना; क्योंकि तुम अपना सफर तय कर चुकी हो।' परन्तु उस बालिकाने आग्रह करके कहा कि 'तुम मुझे टिकट दे दो, नहीं तो, इस घटनाके सुननेपर मेरी माताजी मुझे मारेंगी।' अन्तमें उसने टिकट लेकर उसे फाड़ डाला और वह अपनी राहपर चल दी। परन्तु उसके ये शब्द 'माताजी मुझे मारेंगी'—मेरे हृदयपर एक अमिट छाप छोड़ गये। कितनी वास्तविकता, स्पष्टवादिता, सच्चाई एवं शिक्षा थी इन शब्दोमें। एक चावल के देखनेसे ही चावल पके कि नहीं, इसका पता लगता है। इसी तरह यह बात छोटी-सी थी, पर इससे बच्चीके माता-पिताकी सचाई तथा बच्चोंके चरित्र-निर्माणकी चेष्टाका पता लगता था। मेरी इच्छा हुई कि मैं उतरकर उससे परिचय करूँ एवं उसके माता-पिताके दर्शन करूँ, जो अपनी सन्तानको इतनी सरलतासे सत्य-जीवन बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु बस चल चुकी थी और वह बालिका भी मेरी आँखोंसे ओझल हो चुकी थी।

भजनसिंह सलूजा, एम० बी० बी० एस० (प्रथम वर्ष)



मित्रताका निर्वाह

हजारीमल और बसन्तलाल—दोनों बचपनके मित्र थे। यह लगभग पन्द्रह-बीस वर्ष पहलेकी बात है। दोनों ही बड़े होकर अपने अपने व्यापारमें लग गये। बसन्तलालको व्यापारमें कुछ सफलता मिली। उसने जितने रुपये कमाये, उसका अपनी स्त्रीको जेवर बनवा दिया। हजारीमलका काम नहीं चला। वह संकटमें रहा। होते-होते उसका काम फेल होनेकी नौबत आ गयी। उसे तेईस हजार रुपयेका देना हो गया। बहुत दुखी था हजारीमल। बसन्तलालको इसका पता लगा। पर उसके पास नकद रुपये नहीं थे। वह अपने कुल रुपयोंको गहनेमें लगा चुका था। व्यापारका काम परायी रकमसे करता था। उसकी साख अच्छी जम गयी थी। उसको अपने दोस्तहजारी-मलकी दुरवस्थापर बड़ा दुःख हुआ, उसने मन-ही-मन सोचा गहना न बनवाया होता तो आज ये रुपये हजारीमलके संकट-निवारणमें काम आते। उसने बहुत डरते-डरते अपनी पत्नीसे सारी बातें कहीं; क्योंकि गहना उसी के पास था। पत्नी बड़ी ही साध्वी निकली। उसने कहा—'आप इतना संकोच क्यों करते हैं? गहना आपने ही तो बनवाया था और आज अपने मित्रकी इज्जत बचानेके लिये आपको ही उसकी जरूरत है। इसमें मुझे पूछनेकी कौन-सी बात है। मित्रकी इज्जत तो हमारी ही इज्जत है। गहनेसे तो केवल मेरे शरीरकी ही शोभा बढ़ी

मानी जाती है, पर उनकी इज्जत बचनेमें तो हमारे दोनों परिवारोंकी शोभा है। आप अभी ले जाइये।'

पत्नीकी इन बातोंको सुनकर बसन्तलालकी आँखोंमें स्नेह के आँसू आ गये। उसे पत्नीके इस व्यवहारसे बड़ा ही सन्तोष तथा प्रसन्नता हुई। उसने गहना लिया, गलाया और बेचकर नकद रुपये कर लिये। हजारीमलके कर्जदारोंको सूची वह पहले ही ले आया था, उसने अपने एक आदमीको भेजा और उससे कह दिया कि 'तुम जाकर इन सबको रुपये देकर फाड़खती ले आओ, सबसे यही कहना कि मैं हजारीमलजीका ही आदमी हूँ। उन्होने रुपये भेजे हैं। कहीं मेरा नाम किसी भी तरह न आ जाय। ऐसा ही हुआ था। हजारीमलके घाटे का और उनकी कठिनाईका महाजनोंको पता भी नहीं था। इससे किसीको कोई सन्देह नहीं हुआ। सबने रुपये ले लिये। फाड़खतीकी रसीदें लिख दी। रसीदे सब बसन्तलालके पास पहुँच गयीं। बसन्तलाल सदाकी भाँति रातको हजारीमलके घर गया। वहाँ हजारीमल और उसकी स्त्री—दोनों रो रहे थे। छोटा लड़का पास बैठा माँ-बापके मुँहकी ओर निहार रहा था—विचित्र विषादभरी भंगिमासे। बसन्तलालने जाकर बातचीत की, सहानुभूति प्रकट करते हुए समझाया—'भाई! धीरज रक्खो—भगवान्‌को याद करो, उनकी कृपासे बहुत कठिन कार्य भी आसान हो जाया करता है। हजारीमल जानते थे कि बसन्तलालके मनमें वास्तवमें सच्ची सहानुभूति

और दुःख है, पर उसके पास नकद रुपये है ही नहीं, वह कहाँसे दे। गहना बेचकर वह रुपये दे दे, यह तो हजारीमलके मनमें कल्पना भी नहीं थी। बसन्तलालका उपकार माना। दोनों स्त्री-पुरुष रोकर कहने लगे—'भाई! तुम्हारे पास होता तो तुम दे ही देते। हमारे भाग्यकी बात है। तुम हमारे लिये इतने दुखी होते हो, यह सचमुच हमारे लिये बहुत दुःखद है। हम अपने सच्चे मित्रको दुःख पहुँचानेमें कारण बन रहे हैं।' बसन्तलालकी आँखें भी बरस पड़ीं। पर उसने कुछ नहीं कहा—धीरेसे फाड़खतोकी रसीदोंका लिफाफा हजारीमलके बिछौनेपर तकियेके नीचे रख दिया। बसन्तलालका साहस नहीं हुआ—वह डरा कि कही मेरे इस बर्तावसे हजारीमलके मानको ठेस न लग जाय। वह संकुचित न हो जाय—इसलिये उसने मुंहसे कुछ भी न कहकर चुपके से लिफाफा रख दिया और प्रणाम करके वह चला गया।

पीछेसे जब हजारीमल रोते हुए बिछौनेपर लेटे, तकिया कुछ सरका, तब लिफाफा दिखायी दिया। खोलकर देखा तो रसीदोंको देखकर दंग रह गया। सवेरे महाजनोसे पता लगनेपर उन लोगोने कहाकि 'कल आपने रुपये भिजवा दिये थे। हमलोगोने रसीदे लिख दी थीं।' तब हजारीमलकी समझमें बात आयी। बसन्तलालसे मिलनेपर उसने बड़े संकोचसे स्वीकार किया।

—रामलाल शर्मा

उग्र कर्मका हाथोहाथ दण्ड

कुछ उग्र कर्मोंका फल इसी जन्ममें हाथोहाथ मिल जाता है, इसी तरहकी एक घटनाका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

हमारे एक परिचित बन्धु × × ×में रहते है। उस समय उनके साथ उनकी एक विधवा बहन और दसवर्षीय भानजा भी रहता था। बहन विधवा है और बच्चा नादान है, ऐसा समझकर उन्होने उसे अपने पास रख लिया था। कई वर्षोंसे वे लोग रहते चले आ रहे थे। भाईके कोई सन्तान न थी, अतः मनकी सारी ममता भानजेके पक्षमें आयी, उन्होने उसे कभी भी किसी वस्तुके अभावकी अनुभूति नही होने दी। स्वयं मितव्ययी और कुछ सीमातक कृपण होते हुए भी भानजेके मामलेमें उनकी हथेलीमें छिद्र हो जाया करता था।

आठ वर्ष पूर्व उन्हे गैसकी भयंकर शिकायत रहने लगी। वैसे तो यह बीमारी उन्हें गत बीस वर्षोंसे थी; किन्तु आठ वर्ष पूर्व तो उसने उग्र रूप धारण कर लिया था। ऐसी स्थिति में उन्होंने बीमारीका जमकर इलाज करनेकी सोची। दुकानको बहन और भानजेके सुपुर्दकर जिसने जो जगह सुझायी, वहीं जा पहुँचे। इलाजके सिलसिलेमें वे हमारे शहरमें भी पधारे थे। भानजेकी चिट्ठी हर सप्ताह या पन्द्रह दिनोंमें अवश्य प्राप्त हो जाती थी। उसमें केवल एक ही प्रकारके शब्द रहते थे—'कुशल है और यही आशा करते है। इलाज जमकर करवाना। इधरकी फिकर मत करना, दूकानका कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है।' बस, 'सन्त हृदय नवनीत समाना।' जानेकी जल्दी उन्होने नही की। पूरे पाँच माहतक उन्होंने

जमकर इलाज करवाया। आखिर लौट गये वे अपने शहरको—सर्वांशमें नहीं तो, अधिकांशमें वे रोग-मुक्त हो चुके थे।

स्टेशनपर उन्हें भानजा मिला। बड़े प्रेमसे उसने चरण-स्पर्श किया। तत्पश्चात् कुछ कामको निपटाकर शीघ्र ही घर आनेको कहकर चल दिया। ये घर आ गये, किन्तु यह क्या, घर तो वीरान हो चुका है। पचास-साठ हजारके मालकी दुकानमें कठिनाईसे पाँच-छः सौका माल बचा था। घर और दुकान पूरी तरह विधवाकी माँग बन चुके थे। भानजा लौटकर नहीं आया। तत्पश्चात् काफी समयतक उसका पता भी न चला। बहनसे घर, दुकानकी दुर्दशाका कारण पूछा तो उत्तर मिला कि उसने तो स्वयं गत छः माहसे खाट पकड़ रक्खी है। बाजारमें साख समाप्त हो चुकी थी। घरकी एक अलमारीमें खाली बोतलोंका ढेर लगा पाया। किसी-किसी जगह अभक्ष्य पदार्थके अवशेष भी दीख पड़े। इनका हृदय हाहाकार कर उठा—'माधव! यह तेरी क्या लीला है? मैं यह क्या देख रहा हूँ।' कहकर इन्होने आँखें मींच लीं। दिल थाम लिया और फफक-फफककर रो पड़े। पास-पड़ोससे लोग आये। ऊपरी सहानुभूति दिखलायी। साथ ही सख्त कार्रवाई करनेका अमूल्य परामर्श भी दे दिया। इनसे अब घरकी दशा देखी नहीं जाती थी, घरका कोना-कोना इन्हें अपनी करुण कहानी कहता-सा-प्रतीत होता था। साथ ही उस उद्दण्ड और पापात्मा भानजेको दण्ड दिलवानेका मौन संकेत भी कर रहा था। कण-कण चीत्कार कर रहा था। मौका देखकर बहन भी एक दिन अपने दूरके श्वशुरगृह (कलकत्ते) खिसक गयी। कुछ

लोगोंने एक अर्जी लिखी और उन्हें उसपर केवल हस्ताक्षर करनेको कहा। बाकी कार्रवाई करनेका उत्तरदायित्व उन्होने ओटना स्वीकार किया। अर्जीपर हस्ताक्षर कर दिये गये। लोग पुलिस स्टेशनकी तरफ रवाना हुए। थाना अभी थोड़ी दूर ही रह गया था कि ये आँधीकी तरह दौड़े आये और अर्जी लेकर शीघ्रतासे वापिस लौट गये। अर्जीके इन्होंने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बहन और भानजेको इन्होंने क्षमा कर दिया।

किन्तु लीलाधर इस क्षमादानको सहन न कर सके। जिस प्राणीको हम किन्हीं कारणोंसे दण्ड देना नहीं चाहते अथवा चाहते हुए भी नहीं दे पाते, उसको दण्ड देनेके लिये स्वयं जगन्नियन्ताको व्यवस्था करनी पड़ती है।

कुछ समय पश्चात् इनको कलकत्तेसे एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें बहनके लकवा हो जानेके समाचार लिखे थे। कुछ दिनों पश्चात् उसके काल-कवलित हो जानेकी सूचना मिली इन्हें। इनको मर्मान्तिक वेदना हुई। अभी इस वेदनाका घाव भरा भी नहीं था कि उधर भानजेके विषपान करनेके समाचार प्राप्त हुए। × × ×से चले जानेपर उसकी पीठमें एक छिद्र हो गया था, जिसमेसे चौबीसों घण्टे मवाद-रक्त आदि रिसते रहते थे। पैसा पासमें था नही। कुछ रोगके कारण और कुछ आत्मग्लानिवश उसने विषपान कर लिया था। किन्तु विधाता-के घर अभी उसके लिये ठौर नही थी, सो प्राणान्त न हो सका। हाँ, विषके तीक्ष्ण प्रभावसे सारे शरीरपर सफेद-सफेद निशान बन गये थे। बादमें उनसे एक प्रकारका बदबूदार

पानी भी बहने लगा। इन्होंने सुना तो कलकत्ते भागे। उसकी दशा देख कलेजा मुंहको आता था। खूब दौड़-धूप की; किन्तु अन्ततोगत्वा उसे मौतके मुंहमेंसे न निकाल सके। उधर एक नौकर, जो उनकी दुकानपर था और उस पापकर्ममें सम्मिलित था, बम्बई भाग गया, वहाँ लोकल ट्रेनमें असावधानीवश अपनी दोनों टाँगें गवाँ बैठा। इन्होंने सुना तो पछाड़ खाकर गिर पड़े। बोले—'लीलाधर! लीला समेटो, बहुत हुआ; अब नहीं देखा-सहा जाता। आखिर सारा दण्ड उनको ही क्यों मिलना चाहिये? मैं भी तो उसमें भागीदार हूँ। भात बिखेरकर कौओंको न्यौता तो मैंने ही दिया था। मैंने ही कुछ समझदारीसे काम लिया होता तो आज यह काण्ड क्यों देखनेको मिलता। अन्तर्यामी! बच्चे नादान थे, अज्ञानवश दुष्कर्म कर बैठे!'—कहते हुए वे बच्चेकी तरह फूट-फूटकर रो पड़े। तत्पश्चात् किसी को भेजकर उन्होंने नौकरको अपने पास बुलवाया और अपनी दुकानपर पुनः उसे शरण दी।

आज उस बातको आठ वर्ष होने को आये। अपने अध्यवसाय और लगनसे इन्होंने पुनः अपनी खोयी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। किन्तु कभी-कभी उस घटनाके स्मरणसे वे अत्यधिक विचलित हो जाते हैं और तब कह उठते हैं—'भरी बन्दूक नादानोंके हाथमें मैंने पकड़ायी। दण्डका भागी मैं था, किन्तु मिला उन्हें। अन्तर्यामी कैसा है यह तुम्हारा न्याय!'

सन्त भी भला, किसीको दोष देते हैं?

—गोपालकृष्ण जिंदल



'चुरा गया'

कुछ वर्षों पहले जब बम्बईके पश्चिमीय भागमें 'लोकल इलेक्ट्रिक ट्रेन शुरू हुई थी' उस समयका प्रसङ्ग है। आरम्भमें तो गाड़ियोंकी चीजें सुरक्षित रहीं; परन्तु कुछ दिनों बाद— गाड़ियोंके पंखे तथा ट्यूबलाइटोंके स्थानपर नये पोस्टर लगे दिखायी दिये। जहाँ ट्यूबलाइट और पंखे लगे थे, वह जगह खाली थी और वहाँ पोस्टरोंमें 'चुरा गया' (Stolen) आदि वाक्य विभिन्न भाषाओं और अक्षरोंमें लगे दिखायी देने लगे। जनता आश्चर्यमें थी कि रेलवे 'वाच एण्ड वार्ड' विभागके लिये इतने खर्च करती है, तब भी 'चुरा गया'—यानी गाड़ियोंमें लगे पखे और ट्यूबलाइट चोरी हो जाते है, यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है।

हमारे एक भाई हैं—यहाँ नाम नहीं लिख रहा हूँ—वे एक बड़े बुद्धिमान् और जनताके सेवक हैं। इन्होंने रेलवेको शिक्षा देनेके लिये एक तिकड़म रचा। रेलके डिब्बेमें जहाँ

'चुरा गया' पोस्टर लगे थे, वहाँसे धीरेसे एक पोस्टर उखाड़ लिया और उसे अपनी कमीजकी जेबपर पिनसे लगा लिया। गाड़ीके दूसरे मुसाफिर इन भाईकी इस कार्यवाहीको आतुर नेत्रोंसे देखते रहे। गाड़ी चर्चगेट स्टेशनपर पहुँची और वे भाई उतरकर गेटसे बाहर निकलने लगे। टिकट कलक्टरने टिकट माँगा तो उन भाईने जेबपर लगे 'चुरा गया' पोस्टरकी तरफ अँगुली कर दी। टिकट कलक्टरने उसे पढ़कर पूछा—क्या चुरा गया?' उस भाईने जवाब दिया—'साहेब, पास चुरा गया'। टी० सी० गरम हो गया और उसने भाड़ा चुकानेके लिये कहा। भाईने उत्तर दिया कि "आपकी रेलवेमें इतने-इतने लोग ध्यान रखते हैं, तब भी वस्तुएँ चोरी हो जाती है और उन वस्तुओंके स्थानपर नयी वस्तुएँ न लगाकर जनताके सामने 'चुरा गया' यह बोर्ड लगा दिया जाता है; फिर मैं तो अकेला और अनेक उपाधियोंसे घिरा हुआ मनुष्य हूँ। मेरा पास चोरी हो गया, इसलिये मैंने भी यह पोस्टर लगा लिया।"

टी० सी० उन भाईको स्टेशन-मास्टरके पास ले गया। वहाँ कुछ बोल-चाल हुई और अन्तमें भाईको कोर्टमें पेश करनेका निश्चय किया गया। भाई तो यह चाहते ही थे, वे उत्साहसे कोर्टमें गये। न्यायाधीशके सामने मामला पेश हुआ। रेलवे पूछ-ताछके बाद कोर्टने उन भाईकी जबानी ली! अधिकारियोंसे उन्होंने इतना ही कहा—"रेलवेके पास इतने-इतने 'वाच एण्ड वार्ड'के आदमी होनेपर भी वस्तुएँ चोरी हो

हैं और उन खाली स्थानोंपर नयी वस्तुओंकी व्यवस्था
के बदले 'चुरा गया' (Stolen) आदि पोस्टर लगाकर
के सामने अपनी कमजोरी रक्खी जाती है। देशका
बहुत बलवान् अङ्ग भी इतनी कमजोरी दिखाता और
। पोस्टरोंका खोखला प्रदर्शन करता है तो क्या इसमें
। अपमान नहीं है? मैं तो केवल रेलवेको शिक्षा देनेके
ही कोर्टमें हाजिर हुआ हूँ और इसीलिये मैंने अपनी
र रेलवेका ही 'चुरा गया' पोस्टर 'मेरा पास चोरी हो
—यह बतानेके लिये लगाया है।"

उन भाईकी दलील न्यायाधीशके गले उतर गयी और
में उपस्थित होनेका उनका आन्तरिक उद्देश्य भी कोर्टकी
में आ गया। न्यायाधीशने फैसला देते हुए रेलवे अधि-
योंको बड़ी फटकार बतायी और उन्हें चेतावनी दी कि
। हमारे देशकी नाक कटानेको तैयार हो गये है। आज
चुरा गया'के तमाम पोस्टरोंको उतारकर जहाँ-जहाँ जो-
वस्तुएँ गायब हुई है, वहाँ-वहाँ नयी वस्तुएँ लगवायी
।"

उसी दिनसे रेलवेके सब डिब्बोंमेंसे 'चुरा गया'के पोस्टर
य हो गये और उन स्थानोंपर नये-नये फरफराते पंखे
तेज रोशनीवाले ट्यूब लग गये। (अखण्ड आनन्द)

—प्रेमकुमार एन० ठक्कर



बहूकी बुद्धि

अभी हालकी बात है, उत्तरप्रदेशके ही एक गाँवमें ए
गृहस्थके घरमें रातको चोर घुसे। घरमें स्त्रियाँ सो रही थीं
पुरुष कोई नहीं था। चोरोंने गहना-कपड़ा बटोरकर लगभ
बीस हजारका माल एक पेटीमें भरा और उसे उठाकर
जाने लगे। स्त्रियोंमें एक बहू जाग रही थी। उसने सा
बातें देखीं, पर वह पहले कुछ नहीं बोली। जब चोर पे
ले जाने लगे, दरवाजेतक पहुँचे कि उसने उठकर पानी
एक बड़ी सुराहीको उठाकर बड़े जोरसे चौकमें पटका
धड़ाकेकी आवाज हुई—चोर डरकर पेटीको वहाँ छोड़
तुरन्त भाग गये। बहूकी ठीक समयपर उपजी बुद्धिने बी
हजारका माल बचा दिया।

—सुरेशकुमा



षोडशनाम मन्त्र-जपका चमत्कार

घटना लगभग आठ साल पूर्वकी है, मैं बस्ती जिला-जजके न्यायालयका असेसर था। मेरा घर बस्ती कचहरीसे स मील दूर गाँव (कुरियार) में है। एक दिनकी बात है, मुझे एक कतल-केसके सिलसिलेमें जज साहबके न्यायालयमें असेसर (जूरी) की हैसियतसे उपस्थित होना था।

संयोगवश उस दिन सबेरेसे ही घनघोर वर्षा आरम्भ हो गयी। मार्ग कच्चा, किसी वाहनका प्राप्त होना असम्भव और १० बजे कचहरीमें उपस्थित होना अत्यन्त आवश्यक। हवा इतनी तेज और प्रतिकूल कि छातेकी भी सहायता ले सकना असम्भव। कुछ भी समझमें न आता था कि क्या किया जाय। कचहरीमें न पहुँचनेपर ५१) रुपये जुर्माना देना पड़ता। इसके अतिरिक्त जवाबदेही और अयोग्यता, अकर्मण्यता तथा कर्तव्यहीनताका लाञ्छन अलगसे लग जाता। मनमे विचार उठा कि 'कुछ भी हो, ऐसे तूफान और दुर्दिनमें कदापि न जाऊँ; पर कर्तव्यपालन, बदनामी तथा जुर्मानेका भय।' यही विचार करते-करते ९ बजे गये। वही स्थिति थी—

इहाँ न सुधि सीता कर पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥

मनमें किसी प्रकार चैन न आता था। वर्षा बढ़नेकी जगह घटनेका नाम न लेती थी। ऐसी स्थितिमें किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर चारपाईपर पड़ गया। बगलमें 'कल्याण'का

एक अङ्क खुला पड़ा था। कुछ न सूझनेपर वही उठा
देखने लगा। दैवयोगसे दृष्टि एक लेखपर पड़ी, जिसमे लि
था 'किसी भी कार्यमें आरम्भसे लेकर अन्ततक यदि म
षोडश नाममन्त्र 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृ
हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' का जप चलता रहे तो वह का
अवश्य सफल होता है।' पंक्ति पढ़ते ही मनको कुछ सम्बल
मिलता प्रतीत हुआ। वर्षा अनवरत चल रही थी। चारपाई
उठकर खड़ा हो गया। शरीरपर एक कम्बल और उस
ऊपर एक चद्दर डाला और पानी तथा तूफानमें ही चल दिया
पूरी एकतानतासे मन 'हरे राम हरे राम·· ·········' का ज
कर रहा था। मनमें कार्यसिद्धका आकर्षण भी था और
'कल्याण' के उस लेखकी परीक्षाका भी भाव था। दोनोंके
संयोगसे तन्मयता बढ़ती गयी। वर्षाके सरगमपर पाँव सरप
चलने लगे। मन्त्र-जप सस्वर हो रहा था। मार्ग बहुत ही
ऊखड़-खाबड़ होते हुए भी उस दिन हर रोजसे सरल मालूम
पड़ने लगा। उसी तूफानमें कितनी जल्दी और कब मैं जज
साहबके न्यायालयके सामने पहुँच गया, मुझे पता ही नहीं
चला। घड़ी देखा तो बारह बज रहे थे।

न्यायालय-कक्षमें प्रवेश करके देखा, मुकदमेकी कार्यवाही
चालू थी। पहुँचकर जजसाहबको नमस्कार किया। उन्होंने
मेरी ओर देखते ही, जूरीकी कुर्सियोंकी तरफ नजर डाली
सभी कुर्सियाँ खाली थीं। मेरे अतिरिक्त और दो असेसर थे
जो कक्षके बाहर ही बैठे ऊँघ रहे थे। ये दोनों असेसर महो

दय कई घण्टे पूर्व ही वहा पहुँच चुके थे, किन्तु पुकार न होनेकी वजहसे बाहर ही बैठे ऊँघते रहे।

जजने जब कुर्सियोंको खाली देखा तो तुरन्त ही पेशकारसे प्रश्न किया कि 'आज असेसरोंकी पुकार हुई ही नहीं क्या ?' और मुझे बैठनेका संकेत किया। बात सचमुच यही थी। मैंने समझ लिया कि 'गई गिरा मति फेरि' के अनुसार ही प्रभु-प्रेरणासे आज असेसर लोग पुकारे ही नहीं गये। फलतः मैं सबसे पीछे पहुँचनेपर भी सबसे आगे पहुँचा हुआ माना गया और बहुत पहलेसे उपस्थित वे दोनों असेसर मेरे बाद आकर बैठे। मुकदमेकी अबतक हुई सारी कार्यवाही कैंसिल कर दी गयीं और सुनवाई फिरसे आरम्भ हुई।

मैंने निश्चय कर लिया कि हो-न-हो अवश्य ही यह प्रभुनामके उसी षोडश नाम-मन्त्रका चमत्कार है, जिसके कारण यह अप्रत्याशित बात घटित हो गयी। घटनाका स्मरण करके मन बार-बार पुलकित होने लगा। परीक्षाके भावपर ध्यान जानेपर ग्लानि भी हुई, किन्तु प्रभुके क्षमाशील स्वभाव-पर ध्यान जाते ही वह विलीन हो गयी और मन द्विगुण उत्साहसे 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' का जप करने लगा।

'हारेहुँ खेल जितावहिं मोही' के अनुसार यह घटना मेरे जीवनमें घटित हुई और मैं इसे भक्तजनकी भलाईके लिये ही यथा-तथा प्रकाशित कर रहा हूँ। ॐ तत्सत्।

—बृजमोहन चौधरी

आदर्श दयालुता

यह घटना सन् १९५८ की है। बर्नपुर अस्पतालसे एक महिला निकली, जो कि थोड़े दिनों पूर्व रेलसे कटकर घायल हो गयी थी, अस्पतालमें कोई ऐम्बुलेंस नहीं थी, जो उसे घर पहुँचा देती। लाचार होकर वह पैदल जा रही थी, इतनेमें एक साहबकी कार उसके पाससे आकर गुजरी और वहीं ठहर गयी। साहबने उसे कारमें बिठाकर निश्चित स्थानपर पहुँचा दिया। आश्चर्यकी बात यह कि अबतक कई टैक्सियाँ पार हो चुकी थी, लेकिन किसीने भी उसकी तरफ देखा नहीं। इधर एक विदेशीको देखिये, जिसने हमारे-जैसे काले-कलूटेकी मदद की। धन्य उसकी सभ्यता तथा संस्कृति!

—शुकदेव प्रसाद



मृत्युके समय देवदूतोंका आगमन

आजके युगमें मृत्युके समय यमदूत अथवा देवदूतके आनेकी बातका शिक्षित लोग मजाक उड़ाया करते हैं। किन्तु नीचे एक ऐसी सच्ची घटनाका वर्णन किया जा रहा है, जिसको पढ़कर भौतिकवादी शिक्षित वर्ग भी आश्चर्यन्वित होगा।

यह घटना आजसे १५-२० वर्ष पुरानी है। मेरे पिताजी के लघुभ्राताके श्वशुरके एक निकट-सम्बन्धी भगवद्भक्त, कर्म-काण्डी एवं कथावाचक ब्राह्मण थे। वे सात्विक प्रकृतिके थे। संस्कृतके वे अच्छे ज्ञाता थे। श्रीमद्भागवतपुराण और महा-भारत ग्रन्थोंके वे अच्छे वाचक थे। जब वे वृद्ध हो गये और उनका शरीर दिन-प्रति-दिन क्षीण होने लगा, तब उन्होंने एक दिन घरवालोंको अपनी मृत्युका निश्चित दिन बता दिया। उन्होंने अब अपना इलाज करानेसे भी इनकार कर दिया। मृत्युके छः-सात दिन पूर्व उनकी तबियत ठीक थी और निकट भविष्यमें मृत्यु होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी। किन्तु उनके कथनानुसार निश्चित दिन (एकादशीका दिन) था। प्रातः-

काल चार बजे उनक तबियत कुछ खराब हुई। एक जगह भूमि धोकर और लीप-पोतकर स्वच्छ कर दी गयी एवं शय्यापर उनको लिटा दिय गया। विप्रसमूहद्वारा गीतापाठ एवं भजनादि हो रहा था। नौ बजेके लगभग उन्होने कहा—'एक घड़ी बाद मेरा मृत्यु हो जायगी; मृत्युके बाद कोई शोक न मनावें। आज तो मेरे लिये शुभ दिन है; क्योंकि श्रीकृष्ण-मुरारि मुझे बुला रहे है।' इस प्रकार बात करते-करते ही वे बोले—'देखो, वह आकाशसे विमान उतर रहा है, जिसपर पीतवर्णकी ध्वजा लगी हुई है। उसपर दो भगवान्के पार्षद (देवदूत) पीताम्बरधारी चवँर लिये बैठे है।' यह बात सुनकर सबको बड़ा कौतूहल हुआ। विमान तो सिवा उनके और किसीको नहीं दिख रहा था। उपर्युक्त वाक्य कहते ही उनका स्वर्गवास हो गया। सबको एक भीनी-सी अद्भुत सुगन्धका अनुभव हुआ और सबके नेत्र एक क्षणके लिये अज्ञात शक्तिके वशीभूत हो बन्द हो गये। नेत्र खोलनेपर सबने देखा कि कुछ क्षणों पूर्वका वातावरण गायब हो चुका है। पण्डितजीका निर्जीव स्थूल शरीर पड़ा है। तदनन्तर लौकिक अन्त्येष्टि क्रियादि की गयी।

यह घटना राजस्थानके भीलवाड़ा जिलेके एक ग्रामकी है।

—श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०



मच्छर, मक्खी, बिच्छू इत्यादि कीड़ोंके विष दूर करनेका उपाय

बिच्छू-जैसे विषैले जानवरके विष दूर करनेका एक अनुभूत उपाय है। आमका ताजा बौर एक सेर लेकर हाथोंपर आध घण्टेतक खूब मलना चाहिये। फिर हाथोंको आध घण्टे सूखने दिया जाय। इससे हाथोंमें जादू-जैसा असर हो जाता है और यह असर पूरे एक वर्ष रहता है।

जब कभी कोई बिच्छू इत्यादि काट ले तो जिस आदमीने हाथोंमें बौर मला हो, वह आदमी जिसको बिच्छूने काटा है उस आदमीको आठ-दस मिनटतक हाथोंसे मले (जहाँपर काटा है) निश्चय ही आराम हो जायगा। परन्तु इस टोटकेके प्रयोगमें पैसा लेना महापाप है!

—आर० सी० शर्मा



मूक-सेवा

(१)

'सयानी लड़की हो गयी, विवाह तो करना ही है, पर वे तो पाँचसे कममें मानते ही नहीं तुम जानती हो, मेरे पास कुछ भी नही है । दो सालकी मेरी बीमारीमे सब स्वाहा हो गया—' यों कहकर पन्नालाल रो पड़ा । पत्नी सीता भी रो पड़ी । लड़की सो गयी थी, उसकी ओर माँने देखा तो रुलायी और भी बढ़ गयी । करुणा-रस मानो मूर्तिमान् हो गया । बाहर किवाड़की आड़में खड़ा कोई देख-सुन रहा था ।

पाँचवें दिन अकस्मात् बर्दवानसे भेजी हुई एक बीमा रजिस्ट्री पन्नालालको मिली, उसमे छः हजारके सौ-सौके नोट थे । भेजनेवालेका कोई पत्र साथ नहीं था । लिफाफेपर भेजनेवालेका नाम-पता था, पर पन्नालालके पता लगानेपर वहाँ उस नामका कोई आदमी नहीं मिला । लड़कीके विवाहके लिये भगवान्‌ने ही यह सहायता भेजी है, यह समझकर पन्नालालने सानन्द लड़कीका विवाह कर दिया ।

(२)

'साढ़े ग्यारह हजारकी डिग्री थी । कुर्कीका आर्डर हो चुका, कल-परसों कुर्की आयेगी । नकद पैसा एक भी पास नहीं । कुर्कीमें घरके कपड़े-लत्ते, बर्तन तथा एक छोटा-सा घर कुर्क हो जायगा । बदनामी तो होगी ही, राहके भिखारी हो जायँगे ।' घरवाला बहुत परेशान है, अपनी बदनसीबी और असमर्थतापर रो रहा है! कोई सहायक नहीं !

दूसरे दिन समाचार मिलता है, कोर्टमें रुपये पूरे भरे गये। कुर्कीका हुक्म रद्द कर दिया गया!

(३)

विधवा लड़की है। तीन वर्ष पहले ब्याह हुआ था। घरमें सहायक कोई नहीं, विधवाके माता-पिता मर गये। बहुत बड़े घरानेकी माता-पिताकी एकमात्र लड़की, बड़े सुखसे पली-पुसी। विवाह भी बड़े सम्पन्न घरमें हुआ। पर दोनों ओर ही अकस्मात् भयानक घाटा लगा। सब कुछ जाता रहा। दोनों ही फार्म फेल हो गये। इसी चोटसे माता-पिता और पतिका देहान्त हो गया। लड़की सर्वथा असहाय, असमर्थ। कहाँ जाय, क्या करे। अकस्मात् एक दिन ढाई सौ रुपये मनीआर्डरसे आये। फिर तो कभी कहींसे, कभी कहींसे मनीआर्डरसे रुपये आने लगे, हर महीने। कभी डेढ़ सौ, कभी दो सौ, कभी ढाई सौ, भेजनेवालेके नाम-पते विभिन्न और सभी गलत। भगवान्ने ही यह सहायता की!

ऐसी ही चोरीसे सहायता करनेवाले पवित्र मूक सहायता के लिये सदा प्रस्तुत एक आदमी थे और उनका यह कार्य सतत चालू रहता था। यहाँ तो नमूनेके तौरपर ये तीन उदाहरण दिये गये है।

—एक जानकर



हिंसाका बदला

सुजानगढ़ (राजस्थान) से पूर्व छः कोसपर ढोगरास गाँव है। वहाँके ठाकुर थे—किसनसिंह। विवाहको दो वर्ष हुए थे। ठाकुर अपनी ठकुरानीके साथ एक समय ऊँटपर सवार होकर कहीं जा रहे थे। रास्तेमें उदरासर नामक गाँवके बगलसे जाते समय बकरियोंकी टोलीके साथ एक बड़े भारी बकरेको चरते देखा। उसे देखकर ठकुरानी पतिसे बोली—'आपके घर आनेके बाद मैंने कभी पेटभर बकरेका मांस नहीं खाया है। देखिये, यह कैसा मोटा-ताजा बकरा चर रहा है।'

तीन-चार दिनोंके बाद किसनसिंहने जाकर अकेले चरते बकरेको कांटोंसे दबा दिया और कुछ रात बीतनेपर उसे बोरेमें भरकर वह अपने घर ले आया और मारकर मांस पकाकर सब लोगोंने खा लिया।

एक सालके बाद ठकुरानीके बच्चा हुआ। वह दिनोंदिन बढ़ने लगा। माता-पिताके आनन्दकी सीमा नहीं रही। तेरह वर्षका होनेपर उसकी सगाई कर दी गयी और चौदहवें वर्षमें विवाह करनेका निश्चय किया गया। विवाहकी तैयारी हो गयी। बान बैठ गया। सगे-सम्बन्धी सब घरमें जमा हो गये। बारातका समय हो गया। बाजे बजने लगे। लड़केको स्नान कराकर विवाहकी पोशाक पहनायी गयी और उसे गणेश-पूजनके लिये बैठाया गया। इसी समय अचानक लड़का बेहोश होकर गिर पड़ा। चारों ओर हल्ला मच गया। होश करानेकी चेष्टा की जाने लगी। लोग हवा करने लगे। किसनसिंहने समीप आकर कहा—'बेटा बालसिंह! तुम्हें चैन है या नहीं, चेत करो, देखो, कितने लोग तुम्हारे लिये चिन्तित हो रहे है।'

बालसिंहने होशमें आकर कहा—'पिताजी! आपकी-हमारी इतने ही दिनोंकी माँगत थी। मैं उदरासरके कुँवरदान चारणका छोड़ा हुआ वही बकरा हूँ, जिसे आपने काँटोंमें दबा दिया था और ऊँटपर लादकर घर लाकर मार डाला था और मांस पकाकर मिलकर खाया था। मैंने आपसे अपना वही बदला चुका लिया। अब मैं जा रहा हूँ।'

इतना कहकर वह सदाके लिये सो गया। सब रोते रह गये।

—भूरामल गिनाड़िया



हलवाईकी ईमानदारी

एक गरीब हलवाईकी ईमानदारीकी जो घटना मुझे बतायी गयी, वह इस प्रकार है—

'मैं उन दिनों कानपुरके कर्नलगंज मुहल्लेमें रहता था। सर्राफेकी दूकान थी, गहने बनानेका काम करता था। दिन-भर दूकानपर काम करता था, फिर शामको सारा माल-असबाब चाँदी-सोना-जेवरात आदि लेकर घर चला जाया करता था। घर दूकानसे थोड़ी ही दूरपर था। दूकानमें सुरक्षाका उचित प्रबन्ध न होनेसे कीमती सामान वहाँ नहीं छोड़ता था रोजकी भाँति उस शामको भी मैं माल लेकर, जो गोल डब्बोंमें भरा था, घर जा रहा था। उन दिनों शहरमें हिन्दू मुस्लिम-दंगे जोरोंपर थे। शहरमें शान्ति बनाये रखनेके लि फौजकी गश्त होती थी। सूरज डूबनेके बाद पूरे शहरमें कर्फ लग जाता था। उसके बाद कोई बाहर घूमते पकड़े जानेप गिरफ्तार कर लिया जाता था। मैं दूकान बन्द करके ज ही चार कदम आगे बढ़ा था कि गोरे सिपाहियोंकी ललका सुनायी पड़ी, मुझसे रुकनेके लिये कहा गया। मेरे पास मूल्य वान् सामान था। गोरोंके हाथमें पड़कर पता नहीं उसक क्या दुर्गति हो, क्या पता······ये लोग लूट-खसोटकर खा- जायँ, जिसकी सौ फीसदी सम्भावना थी, मैंने जल्दीसे बढ़ वह सारा माल सामनेकी एक हलवाईकी दूकानमें फेंक दिया।

ा हलवाईने जल्दी-जल्दी जो अपनी दूकान बन्द की तो
ाकी बहुत-सी मिठाई बिखर कर बर्बाद हो गयी। बादमें गोरे
पाही मुझे लारीमें बैठाकर कोतवाली ले गये। वहाँ नाम-
ा आदि पूछकर रातभर रखने के बाद दूसरे दिन सुबह मुझे
ड़ दिया गया।

मैंने अपने मालके मिलनेकी कोई उम्मीद नहीं रक्खी थी।
ते भगवान्के सहारे छोड़ दिया था। मिलेगा तो अच्छा; न
ालेगा तो भी कोई उपाय नहीं। पर मैं उस हलवाईका बहुत
ाभारी हूँ कि उसने पूरा-पूरा माल वैसा ही मुझे लौटा
्या। मेरा एक पाईका भी नुकसान नहीं हुआ। वृद्ध
हाशयजीने थोड़ी देर रुकनेके बाद पुन. कहा—

'पता नहीं वह बेचारा कहाँ है और कैसी हालतमें है।
ह जहाँ भी हो भगवान् उसका भला करे तथा उसको और
सके बच्चोंको तरक्की दे।'

खुदाके बन्दे, उस ईमानदार हलवाईकी मार्मिक कहानी
ुनकर मुझे विस्मयमय हर्ष हुआ और पुराने ऋषि-मुनियोंका
उपदेश 'परद्रव्येषु लोष्ठवत्', 'दूसरोंके धनको मिट्टीके समान
ामझो', याद आ गया। मेरी आँखें गीली हुए बिना न रह
ाकी।

—सुबोधकुमार द्विवेदी



स्थान, अन्न आदिपर संगका प्रभाव

(दो विचित्र स्वप्न)

[कुछ दिनों पहले पिलखुआके भक्त श्रीरामशरणदासजीने महात्मा श्रीआनन्दस्वामीजीके सत्संगमे सुने हुए एक प्रसङ्गके आधारपर एक लेख भेजा था। उसमें जिस घटनाका उल्लेख था, उसका सम्बन्ध सम्मान्य श्रीरणवीरजीसे था। श्रीरणवीरजी आर्यसमाजके प्रसिद्ध विद्वान् महात्मा श्रीआनन्दस्वामी महाराज (गृहस्थाश्रमका नाम—श्रीखुशहालचंदजी) के सुपुत्र हैं और प्रसिद्ध उर्दू 'दैनिक मिलाप'के स्वामी तथा सम्पादक हैं। अंग्रेजी शासनमें इनको फांसी की सजा हुई थी, ये जेलमे रहे थे और फिर निर्दोष छूट गये थे। अतएव उपर्युक्त लेखमें दी गयी घटनाकी ठीक जानकारीके लिये श्रीरणवीरजीसे पूछा गया। उन्होंने उत्तरमें लिखा है-

'पूज्य स्वामीजीने अथवा लेखक महोदयने दो घटनाओंको एक कर दिया है। अपने जेल-जीवनमे मुझे कुछ अजीबसे आध्यात्मिक अनुभव हुए। जैसे—स्थानका प्रभाव क्या है, अन्न और अन्नके बनानेवालेका उस अन्नके खानेवालेपर क्या प्रभाव पड़ता है, सङ्गका क्या प्रभाव है और मन्त्रका क्या प्रभाव है। यह भी देखा कि मन शुद्ध, स्वच्छ और एकाग्र हो तो उसके लिए भूत, भविष्य, वर्तमान सब एक हो जाते है, दूर तथा निकट भी एक हो जाते है।

'ये सब तो लम्बी बाते है। वे दो घटनाएँ जो लेखमे एक कर दी गयी है—ये हैं।'

श्रीरणवीरजीने इतना लिखकर उन दोनो महत्त्वपूर्ण घटनाओ-का सक्षेपमें उल्लेख किया है। उनको यहाँ प्रायः उन्हीकी भाषामे अलग-अलग दो शीर्षक देकर नीचे प्रकाशित किया जा रहा है। पाठक इनपर विचार करे और लाभ उठावे।—सम्पादक]

(१)

स्थानका प्रभाव

पहले दिन मैं लाहौरके बोर्स्टल जेलमें पहुँचा तो रातको मैंने बहुत भयानक सपना देखा। एक कच्चा-सा देहाती मकान। उसके छोटे-से द्वारसे मै भीतर घुसा। खुले आँगनमें पहुँचा। आँगनसे एक कोठरीमे। वहाँ मेरी माताजी अपने बालोंमें कन्घी कर रही थी। मैंने उन्हे बालोंसे पकड़ा। वे चिल्लायी तो उन्हें घसीटता हुआ मै बाहर आँगनमें ले आया। और पता

नहीं, कहाँसे एक छूरा लेकर बार-बार उनकी छातीमें घोंपने लगा। मेरे सामने वे तड़पीं! मेरे सामने उनका खून बहा। फिर भी मैं रुका नहीं। छूरेके बाद छूरा मारता चला गया।

और इसी घबराहटमें जागकर देखा—अँधेरी कोठरी है। जेल है। कहीं कुछ नहीं। अपने माता-पितासे मैं प्यार करता हूँ। अपनी पूज्या माँके लिये ऐसी बात मैंने कभी सोची ही नहीं। दुःख हुआ कि ऐसा सपना आया क्यों? रातभर सो नहीं पाया। सुबह होते ही जेलवालोंसे कहा—'मेरी माताजीका हाल पूछ दीजिये मेरे घरसे। शायद उनकी तबीयत अच्छी नहीं है।' उन्होने पूछकर बताया कि 'वे बिल्कुल ठीक हैं।' लेकिन दूसरी रात फिर वही सपना। फिर मैं सो नहीं पाया। सलाखोंवाले द्वारके पास आकर खड़ा हो गया। तभी गश्त करते हुए एक जेल-अफसर उधरसे गुजरे। मुझे देखकर बोले—'तुम सोये नहीं?' मैंने उन्हें स्वप्नकी बात कही तो वे आश्चर्यसे बोले—'यह कैसे हो सकता है; तुम कल यहाँ इस कोठरीमें आये हो, परसोंतक यहाँ एक और आदमी था एक देहाती। उसने ठीक ऐसे ही अपनी माँकी हत्या की थी। ठीक ऐसा ही वह मकान था, जैसा तुमने सपनेमें देखा। ठीक ऐसे ही वह बदनसीब माँ तड़पी और चिल्लायी थी। ठीक ऐसे ही वह शैतान उसे छूरेके बाद छूरा मारता गया था। मैंने गवाहोंके बयान सुने हैं। परसों ही उस देहातीको फाँसीकी आज्ञा हुई। उसे सेण्ट्रल जेलमें भेज दिया गया। लेकिन तुमको यह सपना आया कैसे!'

तब मैंने समझा कि हमारे शास्त्र जिसको स्थानका प्रभाव कहते है, वह क्या है। वह अभागा आदमी मुझसे पहले कई मास इस कोठरीमे रहा। हर समय वह अपने कुकृत्यकी बात सोचता था और उसके विचार, उसकी भावनाएँ, उसकी पापमयी अनुभूति इस कोठरीके कण-कणमें धँसी जाती थी। वह चला गया, लेकिन उसकी दूषित, पापपूर्ण भावना अब भी इस कोठरीमें है, उसीके कारण मै यह सपना देखता हूँ।

मैने जेलके अधिकारीसे कहा—'आप कृपा करके मेरी कोठरी बदल दीजिये। मैं यहाँ रहूँगा नही। ऐसा न हुआ तो मैं अनशन कर दूँगा।'

लेकिन अनशनकी नौबत नही आयी। दूसरे दिन मेरी कोठरी बदल दी गयी। फिर वह सपना कभी आया नही।*

---

*सङ्गका अद्भुत प्रभाव है। जैसा सङ्ग होता है, जीवन उसी रगमे रँग जाता है। सङ्ग केवल मनुष्यका ही नही होता। स्थान, भोजन, वस्त्र, चित्र साहित्य, व्यवसाय, दर्शन, श्रवण, स्पर्श आदि सबका होता है और उसका निश्चित प्रभाव पडता है। बुरी चीजोके सङ्गसे मन बुरा बनकर जीवन बुरा हो जाता है, इसीसे सभी प्रकारके दु सङ्गका त्याग करना आवश्यक है।

वरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट सग जनि देहि विधाता॥

—सम्पादक

(२)

भोजन बनानेवालेका भोजन करनेवालेपर प्रभाव

यह घटना लाहौरके सेन्ट्रल जेलमें हुई। मैं तब फाँसीकी कोठरीमें था। फासीका हुक्म हो चुका था। यहीं मैंने पहली बार भगवान्‌का उपलब्धि की। पहली बार सच्चे रूपमें मैं आस्तिक बना। (यह दूसरी कहानी है, उसे यहाँ नहीं लिखूँगा।) यहीं मैंने पूज्य पिताजीसे उपनिषद् पढ़ना शुरु किया। गायत्री और मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप भी शुरू किया। मन स्वच्छ था, निर्मल और शान्त।

तभी एक रात गन्दे-गन्दे सपने आने लगे। हर बार मैं घबरा कर उठता। थोड़ा-सा जाप करके सो जाता। फिर वही स्वप्न। वही रोती-चिल्लाती हुई नौजवान-सी लड़की। वही कुकर्म। तंग आकर रातके दो बजे मैंने हाथ-मुह धोये। जापके लिये बैठ गया। लेकिन पहलेकी तरह जापमें भी जी नहीं लगा। दूसरे दिन पिताजी आये तो उनसे सारी बात कही। उन्होंने पूछा—'कोई बुरी किताब तो नहीं पढ़ी?

मैंने कहा—'मेरे पास उपनिषदोंके सिवा कोई किताब है ही नहीं।'

वे बोले—'किसी बुरे आदमीकी बातें तो नहीं सुनीं ?'

मैंने कहा—'यह फासीकी कोठरी है। यहाँ आयेगा कौन?

वे बोले—कोई बुरा खाना तो नहीं खाया?'

मैंने कहा—'खाना तो बहुत स्वादु था। एक नया कैदी आया है। उसने बनाया था।'

पिताजीने जेलवालोंसे पूछा तो पता लगा कि यह नया कैदी एक नौजवान लड़कीसे बलात्कार करनेके अपराधमें कैद हुआ है। उसकी सारी कहानी सुनी तो वह ठीक वही थी जो मैंने सपनेमें देखी थी।

प्रकट है कि उसके बाद मैंने उसका बनाया हुआ भोजन नहीं किया, फिर वह सपना भी नहीं आया।

तब समझा कि हमारे शास्त्र भोजन बनानेवालेकी शुद्धतापर जो इतना जोर देते है, सो क्यों देते हैं।*

—रणवीर



---

* भोजन एक पवित्र यज्ञ है, जिसके द्वारा वैश्वानररूपसे अन्तरमें विराजित भगवान्‌की पूजा होती है, वह जीभकी तृप्तिके लिये खाया जानेवाला 'खाना' नही है। भोजनका मन तथा शरीरपर अनिवार्यरूपसे बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। उपर्युक्त सत्य घटनासे यह सिद्ध होता है—भोजन बनानेवाले व्यक्तिके विचारपरमाणु भी भोजन करनेवाले मनपर अपना प्रभाव डालते हैं। इसलिये भोजनकी पवित्रतापर शास्त्रोंने इतना जोर दिया है। भोजन पवित्रताके लिये नीचे लिखी बातें आवश्यक है—

(क) भोजन जिन पदार्थोंसे बना है वे पदार्थ सत्य और न्याय संगत रीतिसे उपार्जित धनसे खरीदे हुए हों; अन्यायोपार्जित धनसे अन्नकी अशुद्धि होती है और खानेवालेकी बुद्धि बिगड़ती है।

(ख) भोजन करानेवालेके मनमे प्रेम तथा; सद्भाव हो, द्वेष असद्भाव न हो । इसीलिये श्रीकृष्णने दुर्योधनके यहाँ भोजन नही कि था । द्वेष, दु.ख और असद्भावयुक्त भोजनसे शरीरमे रोग होते है मानस रोगोका भी उदय तथा संवर्धन होता है ।

(ग) भोजन बनानेवाला स्नान किया हुआ शुद्ध हो; स्वच्छ व पहने हो; उसके कोई रोग न हो; वह काम, क्रोध, भय, हिं विषाद आदिकी मानस स्थितिमे न हो । सर्वथा शुद्ध आच विचारवाला हो ।

(घ) भोजन बनानेका स्थान गन्दगी-भरा न हो, शुद्ध धोया हो, अहिंसामय हो, एकान्त हो, सम्भव हो तो गोबर तथा शुद्ध मि लिपा-पुता हो ।

(ङ) भोजन-पदार्थ राजस-तामस न हो—अधिक खट्टा, अधि नमकीन, अधिक कड़वा, अधिक तीखा, अधिक गरम, जलन पैद करनेवाला और रूखा तथा मनमे रजोगुणीवृत्ति——भोगवासनाएं उत्पन्न करनेवाला भोजन राजस होता है; एवं रसहीन, दुर्गन्धयुक्त वासी, जूठे, अमेध्य, मनमे पापवृत्ति तथा विकार पैदा करनेवाले— लहसुन, प्याज आदि पदार्थ तामसिक है और शराब, अण्डे तथा मास आदि तो घोर तामसिक है । इनसे बुद्धिनाश, सत्त्वनाश तथा विभिन्न मानस तथा शारीरिक रोगोकी निश्चित उत्पत्ति होती है ।

(च) किसीका जूंठा न हो । जब भोजन बनानेवालेके अन्तरस्थ विचारोके परमाणुओंका खानेवालेपर असर होता है तब जूंठनका असर तो निश्चय होगा ही । जूंठन खाना अत्यन्त हानिकर है । आजकल जूंठनका विचार प्राय: उठ गया है । व्यक्तिगत ही नही, सामूहिक 'बफे पार्टी,मे प्रत्यक्ष पशु-आचारवत् जूंठन खायी जाती है । यह बड़ा ही घातक है ।

—सम्पादक

एक अद्भुत चमत्कारी कवच ! आप सिद्ध कर देखें

चौदह-पंद्रह वर्षकी कन्या बुखारसे बड़बड़ा रही है। कई दिनोंसे बुखारकी तेजी ही कम होनेमें नहीं आ रही है, डाक्टरी उपचार चल रहे हैं; किन्तु गरमी, सिर-दर्द, पीड़ा और ज्वरका प्रकोप कम नहीं हो रहा है। डाक्टर परेशान और घरवाले उद्विग्न ! अब क्या करें।

मेरे चचा डा० बेनीचरण महेन्द्र (अध्यक्ष, विज्ञान-विभाग, आगरा कालेज) उसे देखने गये। लड़कीकी बुरी हालत थी। वह तड़पती हुई विस्फारित नेत्रोंसे आनेवालोंको देखती, पर कुछ कह न पाती। सभी बड़े परेशान थे। चचा साहब भी बीमारके समीप आ खड़े हुए। उन्हें देखकर उस कन्यामें कुछ जागृति-सी आयी। वह लड़खड़ाती-सी जबानमें बोली......'स्तोत......स्तोत।'

'स्तोत' क्या, कोई भी न समझ पाया। हमारे चचाजी यकायक उस लड़कीका अभिप्राय समझे और बोले, 'ले बिटिया, तूने अच्छी याद दिलायी ! अभी स्तोत्रसे तेरा बुखार दूर करता हूँ।'

कौन-सा स्तोत्र ? कैसा स्तोत्र ? क्या यह भी चिकित्सा शास्त्रकी कोई नयी खोज है ? हमलोग कुछ भी समझ न पाये।

उधर चचा साहब, बिमार के पास सिरहाने बैठ गये और उसके ऊपर हाथ फेरते हुए संस्कृतमें कुछ मन्त्र परम श्रद्धा और पूर्ण विश्वासके साथ उच्चारण करने लगे। वे उस मन्त्र के शब्दों, छिपे हुए विचारों और गुप्त संकेतों (Suggestion)

में तन्मय हो गये। लगभग दस मिनिटतक बीमारका कमरा मन्त्र-ध्वनिसे मुखरित होता रहा। सारा वातावरण मन्त्रकी आवाजसे गूँजने लगा। कन्या शान्त दिखायी देने लगी, उसकी पीड़ा कम दिखायी दी और धीरे-धीरे जैसे किसी अदृश्य गुप्त शक्तिका प्रभाव उसपर होने लगा। उसे नींद आ गयी। सभी चकित थे। लड़कीकी तड़पन कम हो चुकी थी। फिर बुखार नापा गया, तो सबने आश्चर्यसे देखा कि सचमुच वह कम होकर ९९ पर आ गया था। वह एक हैरतमें डालनेवाला दृश्य था। जहाँ डाक्टरका इन्जेक्शन कुछ काम न कर सका था, वहाँ हमारे चचाजीका चमत्कारी स्तोत्र काम कर गया था। वह कौन-सा करिश्मा था, सब पूछने लगे।

सभी उस स्तोत्रकी बातचीत सुनने लगे। हमारे चचाजीने बताया—'मैंने इस अद्भुत स्तोत्रका प्रयोग अनेक संकटकालीन परिस्थितियोंमें किया है। बिच्छू काटनेसे लेकर ऋणग्रस्तता, नौकरी छूटना, बुखार, तबियत खराब होना, गमी-मुसीबत, विपत्ति, सिर-दर्द, चिन्ता और अन्यान्य संकटकालीन परिस्थितियोंमें काममें लिया है। हर तकलीफमें इस स्तोत्रने अपना चमत्कार दिखाया है। मुझे ही नहीं, सैकड़ोंको अद्भुत लाभ पहुँचा है।'

हमने पूछा, 'आपको यह किसने सिखाया ?'

वे बोले, 'एक बार हम बीमार पड़े थे। बीमारीसे बड़े परेशान थे। मन बड़ा उद्विग्न था। सब प्रकारके उपाय करके हार रहे थे। हमसे मिलने एक मित्र आये तो उन्होंने उन्हीं दिनों आगरेमें आये हुए एक महात्माका नाम बताया

और उनसे सलाह लेनेको कहा। महात्माजीको बड़ी कठिनाईसे लाया गया, तो उन्होंने एक स्तोत्रका पाठ किया और देखते-देखते दस मिनिटमें मुझे मानसिक बल मिला। स्तोत्रका अर्थ मैंने विस्तारसे समझा और पूर्ण विश्वासके साथ उसे नवरात्रमें सिद्ध किया। अब मेरी यह पेटेण्ट दवाई बन गया है। अनेक व्यक्ति संकटके समय मुझे बुलाकर इसका पाठ कराते हैं और सदैव लाभ उठाते हैं। इसमें अपूर्व शक्ति, साहस और गुण भरे हुए हैं। यह बड़ा गुणकारी है। इसके एक-एक शब्दमें नयी शक्ति उत्पन्न करनेका रहस्य भरा पड़ा है। यह एक चमत्कारी कवच है।'

मैंने पूछा, 'आप तो विज्ञानके आचार्य हैं। आपको इस स्तोत्रपर कैसे विश्वास हुआ ? धर्म और विज्ञान तो बिल्कुल पृथक् दिशाओंमें चलते हैं। एक श्रद्धाप्रधान है, तो दूसरा बुद्धिप्रधान।'

वे बोले, 'आप जानते हैं कि ध्वनिका प्रभाव मनुष्यके शरीर और मनपर पड़ता है। युद्धमें बन्दूक, बम, बारूदके फटाके तथा भीषण ध्वनियोंसे मनुष्यके शरीर और मनमें अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। कितनोंके ही मुंह टेढ़े हो जाते है, लकवा हो जाता है, नाड़ीसंस्थान कमजोर पड़ जाता है और हृदयके अनेक रोग विकसित हो जाते हैं। तेज आवाजसे वायुमण्डलमें कम्पन पैदा होते हैं, जो वायुके माध्यमसे मनुष्यके मस्तिष्कपर मजबूत प्रभाव डालते हैं। यह प्रभाव अच्छा भी हो सकता है। इससे रोगी और चिन्तित मनमें शान्ति और बल पैदा हो सकता है। जिस स्तोत्रको मैं पढ़ता

हूँ, उससे वायुमण्डलमें आरोग्य, बल, शान्ति और रक्षाकी वृद्धि होती है। ये कम्पन बीमारके गुप्त मनमें जाकर रोग-शोक, पीड़ा और परेशानीके विचार दूरकर दिव्य मानसिक बलकी सृष्टि करते हैं। इस आत्मबलसे ही रोग दूर होते हैं। जितनी पुष्टतासे व्यक्ति स्तोत्रका पाठ करता है, उतनी शीघ्रतासे ही क्लेश और परेशानी दूर होकर आनन्द और स्वास्थ्यकी स्थिति आती है। यह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया (दवाई) है।'

वह स्तोत्र कौन-सा है?

इस चमत्कारी स्तोत्रका नाम 'रामरक्षास्तोत्र' है। इसके बुधकौशिक ऋषि हैं। इसमें महासती सीता तथा महाशक्ति-केन्द्र भगवान् श्रीराम इसके देवता हैं। श्रीमान् हनुमान्‌जी इसके कीलक हैं। यह अनुष्टुप् छन्दमें लिखा गया है। भगवान् रामकी इतनी प्रचण्ड आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं कि उनकी सिद्धिसे ससारके सब शारीरिक और मानसिक रोग दूर किये जा सकते है। सिद्धकर्त्ताको बड़े विश्वास और आत्म-श्रद्धासे इसका पुनः-पुनः पाठ करना चाहिये और विशेषरूपसे नव-रात्रमें इसको सिद्ध करना चाहिये। रामनवमीभी इसके लिये पवित्र अवसर है।

उत्तम तो यह है कि 'रामरक्षास्तोत्र'का अर्थ समझ लिया जाय; क्योंकि इसके अक्षर-अक्षरमें शक्ति संचारकी पवित्र भावनाएँ भरी पड़ी हैं।

लीजिये, आप भी सिद्ध कीजिये

नीचे लिखे रामरक्षास्तोत्रपर ध्यान एकाग्र कीजिये। उच्च स्वरसे और प्रगाढ़ श्रद्धापूर्वक उच्चारण कीजिये। आपमें

भगवान् श्रीरामके प्रति जितना अखण्ड विश्वास होगा, उतना ही लाभ होगा। बिना श्रद्धाके कुछ लाभ न मिलेगा।

'रामरक्षास्तोत्र' एक मनोवैज्ञानिक औषधि है। इसमें वे सब भव्य विचार भरे पड़े हैं, जिनसे मानसिक रोग दूर होते है और अलौकिक शक्ति उत्पन्न होती है।

जब आप बेहद घबरा रहे हों, परेशानी मारे डालती हो, जीना न चाहते हों, घोर अशान्ति और घृणामेंसे गुजर रहे हों, जीवन नीरस और दुखी मालूम होता हो, संसार कपटी, निर्दयी और पाखण्डी प्रतीत होता हो तब आप रामरक्षा-स्तोत्रका पाठकर सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्तिसे जरूर लाभ उठायें। धनबल, विद्याबल और बुद्धिबलसे भी अधिक बलवान् यह मन्त्र है। इससे कुसंस्कार दूर होकर शुभ सस्कार जमते हैं और आशाकी किरणें फूट निकलती है। हजारो व्यक्ति रामरक्षास्तोत्रसे मृत्यु, परेशानी, पागलपन और आत्महत्या-जैसे रोगोंसे बचे है। इससे शरीर रोगविहीन होता है, आरोग्यकी वृद्धि होती है, मस्तिष्क तथा ज्ञानतन्तु पुष्ट होते है, स्मरणशक्ति तीव्र होती है, रक्तचाप (ब्लड-प्रेसर) और हृदय-राग मूलसे दूर हो जाते है। हमारे मानसिक स्वास्थ्य और सन्तुलन (Mental balance) के लिये इसका प्रतिदिन पाठ किया जाय तो गुणकारी है। प्रत्येकको पूजाके साथ प्रतिदिन इसका अभ्यास करना चाहिये। (अनुष्ठानके लिये नवरात्रमें ११ पाठ हो तो उत्तम है।

चमत्कारी रामरक्षास्तोत्र

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥१॥

श्रीरघुनाथजीका चरित्र सौ करोड़ विस्तारवाला है और उसका एक-एक अक्षर मनुष्योंके बड़े-से-बड़े पापोंको नाश करनेवाला है ॥१॥

ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम् ।
जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् ॥२॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तंचरान्तकम् ।
स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥३॥
रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम् ।
शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः ॥४॥

जो नीलकमलदलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन, जटाओंके मुकुटसे सुशोभित, हाथोंमें खड्ग, तूणीर, धनुष और बाण धारण करनेवाले, राक्षसोंके संहारकारी तथा ससारकी रक्षाके लिये अपनी लीलासे ही अवतीर्ण हुए हैं, उन अजन्मा और सर्वव्यापक भगवान् रामकी सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित यादकर प्राज्ञ पुरुष इस सर्वकामप्रदा और पाप-विनाशिनी रामरक्षाका पाठ करे। वे कहें कि 'राघव मेरे सिरकी और दशरथात्मज मेरे ललाटकी रक्षा करें ॥ २–४ ॥

कौसल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती ।
घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः ॥५॥

'कौसल्यानन्दन वे श्रीराम मेरे नेत्रोंकी रक्षा करें। विश्वामित्र प्रिय कानोंको सुरक्षित रक्खें और यज्ञरक्षक श्रीराम नाक तथा सौमित्रिवत्सल मेरे मुखकी सदैव रक्षा करें ॥ ५ ॥

जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः ।
स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ॥६॥

करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् ।
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः ॥७॥
सुग्रीवेशः कटी पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ।
ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत् ॥८॥
जानुनी सेतुकृत्पातु जंघे दशमुखान्तकः ।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ॥९॥

'मेरी जिह्वाकी विद्यानिधि, कण्ठकी भरतवन्दित, कन्धोंकी दिव्यायुध और भुजाओंकी महादेवजीका धनुष तोड़नेवाले वीर राम रक्षा करें। हाथोंकी सीतापति, हृदयकी परशुरामजीको जीतनेवाले राम, मध्यभागकी खर नामके राक्षसका नाश करनेवाले और नाभिकी जाम्बवान्‌के आश्रयरूपी राम रक्षा करें। मेरी कमरकी सुग्रीवके स्वामी, सक्थियोंकी हनुमत्प्रभु और ऊरुओंकी राक्षसकुल-विनाशक रघुश्रेष्ठ श्रीराम रक्षा करें। मेरे जानुओंकी सेतुकृत्, जंघाओंकी रावणको मारनेवाले, चरणोंकी विभीषणको ऐश्वर्य देनेवाले और वीर श्रीराम मेरे सारे शरीरकी रक्षा करें ॥ ६–९ ॥

एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् ।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥१०॥
पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः ।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥११॥
रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् ।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥१२॥
जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम् ।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥१३॥

जो पुण्यपुरुष रामबलसे सम्पन्न इस रक्षा का पाठ करता है, वह दीर्घायु, सुखी, पुत्रवान् विजयी और विनय-सम्पन्न होता है। जो जीव पाताल, पृथ्वी अथवा आकाशमें विचरते हैं और जो छद्मवेशसे घूमते रहते है, वे रामनामोसे सुरक्षित पुरुषको देख भी नहीं सकते। 'राम', 'रामभद्र', 'रामचन्द्र' आदि पवित्र नामोंका स्मरण करनेसे मनुष्य पापोंमें लिप्त नहीं होता है। वह इन नामोंकी शक्तिसे भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ १०–१२ ॥

जो पुरुष जगत्को विजय करनेवाले एकमात्र मन्त्र राम-नामसे सुरक्षित इस स्तोत्रको कण्ठमें धारण करता है, अर्थात् जबानी याद कर उपयोगमें लाता है, उसे संसारकी सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है ॥ १३ ॥

वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत्।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥१४॥

जो मनुष्य 'वज्रपञ्चर' नामक इस रामकवचका स्मरण करता है, उसकी आज्ञाका कही उल्लंघन नहीं होता और उसे सर्वत्र जय और मङ्गलकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

आदिष्टवान्यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः।
तथा लिखितवान्प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥१५॥

श्रीशिवजीने रात्रिके समय स्वप्नमें इस रामरक्षाका जिस प्रकार आदेश दिया था, उसी प्रकार प्रातःकाल जागनेपर बुधकौशिक ऋषिने लिख लिया ॥ १५ ॥

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम्।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान्स नः प्रभुः ॥१६॥

जो मानो कल्पवृक्षोके बगीचे हैं तथा समस्त आपत्तियोंका

अन्त करनेवाले हैं, जो तीनों लोकोंमें परम सुन्दर है, वे श्रीमान् राम हमारे प्रभु हैं ॥ १६ ॥

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥१७॥
फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१८॥
शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥१९॥

जो तरुण अवस्थावाले, रूपवान्, सुकुमार, महाबली, कमलके समान विशाल नेत्रवाले, चीरवस्त्र और कृष्णमृग-चर्मधारी, फल-मूल आहार करनेवाले, संयमी, तपस्वी, ब्रह्म-चारी, सम्पूर्ण जीवोंको शरण देनेवाले, समस्त धनुर्धारियोमें श्रेष्ठ और राक्षस-कुलका नाश करनेवाले हैं, वे रघुश्रेष्ठ दशरथकुमार राम और लक्ष्मण दोनों भाई हमारी रक्षा करें ॥ १७–१९ ॥

आत्तसज्जधनुषाविषुस्पृशावक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ।२०
सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा ।
गच्छन् मनोरथान् नश्च रामः पातु सलक्ष्मणः ॥२१॥
रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली ।
काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्येयो रघूत्तमः ॥२२॥
वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः ।
जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥२३॥

इत्येतानि जपेन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः।
अश्वमेधायुतं पुण्यं स प्राप्नोति न संशयः ॥२४

जिन्होंने संधान किया हुआ धनुष ले रक्खा है, बाणका स्पर्श कर रहे हैं तथा अक्षय बाणोंसे युक्त तूणीर लिये हुए हैं, वे राम और लक्ष्मण मेरी रक्षा करनेके लिये मार्गमें सदा ही मेरे आगे चलें ॥ २० ॥

सर्वदा उद्यत, कवचधारी, हाथमें खड्ग लिये, धनुष-बाण धारण किये तथा युवा अवस्थावाले भगवान् राम लक्ष्मणजीसहित (आगे-आगे) चलकर हमार मनोरथोंकी रक्षा करें ॥२

(भगवान्का कथन है कि) राम, दाशरथि, शूर, लक्ष्मणानुचर, बली, काकुत्स्थ, पुरुष, पूर्ण, कौसल्येय रघूत्तम, वेदान्तवेद्य, यज्ञेश, पुराणपुरुषोत्तम, जानकीवल्लभ, श्रीमान् और अप्रमेयपराक्रम— इन नामोका नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक जप करनेसे मेरा भक्त हजारों अश्वमेध यज्ञसे भी अधिक फल प्राप्त करता है—इसमें कोई सन्देह नही ॥ २२–२४ ॥

रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम्।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः ॥२

जो लोग दूर्वादलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन, पीताम्बरधारी, भगवान् श्रीरामका इन दिव्य नामोसे स्तवन करते हैं, वे संसारचक्रमें नही पड़ते ॥ २५ ॥

रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं
काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम्।
राजेन्द्रं सत्य संधं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्तिं
वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम्

लक्ष्मणजीके पूर्वज, रघुकुलमें श्रेष्ठ, सीताजीके स्वा

ातिसुन्दर, ककुत्स्थकुलनन्दन, करुणासागर, गुणनिधान, ाह्मणभक्त, परम धार्मिक, राजराजेश्वर, सत्यनिष्ठ, दशरथ-ुत्र, श्याम और शान्तमूर्ति, सम्पूर्ण लोकोंमें सुन्दर रघुकुल-तिलक, राघव और रावणारि भगवान् रामकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २६ ॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥२७॥

राम, रामभद्र, रामचन्द्र, विधातृस्वरूप, रघुनाथ, प्रभु सीतापतिको नमस्कार है ॥ २७ ॥

श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम
श्रीराम राम भरताग्रज राम राम ।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम
श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥२८॥

हे रघुनन्दन श्रीराम ! हे भरताग्रज भगवान् राम ! हे रणधीर प्रभु राम ! आप मेरे आश्रय होइये ॥ २८ ॥

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥२९॥

मैं श्रीरामचन्द्रके चरणोंका मनसे स्मरण करता हूँ, श्रीरामचन्द्रके चरणोंका वाणीसे कीर्तन करता हूँ, श्रीराम-चन्द्रके चरणोंको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ तथा श्रीरामचन्द्रके चरणोंकी शरण लेता हूँ ॥ २९ ॥

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालु-
र्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥३०

राम मेरी माता हैं, राम मेरे पिता हैं, राम स्वामी और राम ही मेरे सखा हैं। दयामय रामचन्द्र ही मेरे सर्व हैं, उनके सिवा और किसीको मैं नही जानता—बिल्कुल न जानता ॥ ३० ॥

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥३

जिनकी दायीं ओर लक्ष्मणजी, बायीं ओर जानकी और सामने हनुमान्जी विराजमान हैं, उन रघुनाथजीकी वन्दना करता हूँ ॥ ३१ ॥

लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं
राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥३२॥

जो सम्पूर्ण लोकोंमें सुन्दर, रणक्रीडामें धीर, कमलन रघुवंशनायक, करुणामूर्ति और करुणाके भण्डार हैं, श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ३२ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥३

जिनके मनके समान गति और वायुके समान वेग है, जो परम जितेन्द्रिय और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ है, उन पवननन्दन वानराग्रगण्य श्रीरामदूतकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ३३ ॥

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥३४॥

कवितामयी डालीपर बैठकर मधुर अक्षरोवाले 'राम राम' इस मधुर नामको कूजते हुए वालमीकिरूप कोकिलकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ३४ ॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥३५॥

आपत्तियोंको हरनेवाले तथा सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करनेवाले लोकाभिराम भगवान् रामको मै बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥ ३५ ॥

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम् ॥३६॥

'राम-राम' ऐसा घोष करना सम्पूर्ण संसारबीजोंको भून डालनेवाला, समस्त सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति करानेवाला तथा यमदूतोको भयभीत करनेवाला है ॥ ३६ ॥

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।

रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर ॥३७

राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीरामजी सदा विजयको प्राप्त हो
हैं। मैं लक्ष्मीपति भगवान् रामका भजन करता हूं। जि
रामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राक्षससेनाका ध्वंस कर दिया था,
उनको प्रणाम करता हूँ। रामसे बड़ा और कोई आश्रय नह
है। मैं उन रामचन्द्रजीका दास हूँ, मेरा चित्त सदा राम
ही लीन रहे; हे राम! आप मेरा उद्धार कीजिये ॥ ३७ ॥

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥३८

(श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं—) हे सुमुखि
रामनाम विष्णुसहस्रनामके तुल्य है। मै सर्वदा 'राम, रा
राम' इस प्रकार मनोरम रामनाममें ही रमण करता हूँ ॥३

उपर्युक्त स्तोत्रके अक्षर-अक्षरमें शक्ति भरी हुई है।
विश्वासके साथ (मूल संस्कृत श्लोकोंका) पाठ-जप कर
चमत्कारी फल प्राप्त होते हैं। आप भी सिद्ध कर देखिये

—डॉ० रामचरण महेन्द्र, एम०ए०, पी-एच्०डी



*रामरक्षास्तोत्रकी (अनुवादसहित) अलग छपी हुई पुस्
गीताप्रेससे ४ पैसेमें मिल सकती है।

अभिभावककी त्यागभावना

जूनका महीना था। सब हाई स्कूल खुल गये थे। नये त्रका पहला दिन था। विद्यार्थियोंके अभिभावक एकके बाद क चले आ रहे थे। जिस अभिभावककी वार्षिक आय १२००) पयेसे कम हो, सरकारकी ओरसे उसके बालकोंकी फीस ई० ो० सी० माफ की जाती थी। लगभग सभी अभिभावक इससे ाभ उठा रहे थे। शामतक माफी चाहनेवालोंमें, जो पढ़े-लिखे वे माफीके फार्मपर हस्ताक्षर करके और बिना पढ़े-लिखे ोग बायें हाथके अँगूठेकी छाप लगाकर उपकार मानकर चले ये।

मेरे क्लासमें एक सिन्धी लड़की नये वर्षसे भर्ती हुई थी। स्कूलका समय पूरा होनेपर मैं हाजिरी-रजिस्टर लेकर स्टाफ-रूममें आकर कुरसीपर बैठ गयी। इतनेमें वह सिन्धी लड़की स्टाफ-रूपके दरवाजेपर दिखायी दी। 'कैसे आना हुआ बहिन?' मैंने सीधा प्रश्न किया। उसने जरा सकुचाते हुए कहा—'साहेब! मेरे पिताजीने पुछवाया है कि 'मै यदि एक सप्ताह बाद फीस भरूँ तो कोई आपत्ति है?' मैने नकारमें सिर हिलाते हुए कहा-'नही, आपत्ति नहीं है, परन्तु तुम्हारे पिताजीको कल आते समय स्कुलमें साथ ले आना।' 'अच्छी बात है'—कहकर लड़की चली गयी।

दूसरे दिन एक अधेड़ सद्‌गृहस्थ मेरी आफिसमें आये, वह लड़की साथ थी। इससे मैंने अनुमान कर लिया कि ये उसके पिता होंगे। आते ही वे दोनों हाथ जोड़कर मुसकराते हुए खड़े हो गये। उनकी पोशाक देखनेसे कल्पना होती थी कि वे कोई अफसर होने चाहिये।

मैंने कहा—'देखिये, सरकारकी ओरसे यह घोषणा की ग
है कि जिस अभिभावककी वार्षिक आय १२००)रुपयेसे क
हो, उसके बच्चोंकी ई० बी० सी० फीस माफ कर दी जाय
आपकी इच्छा बच्चोंकी फीस माफ करानेकी हो तो मैं फार्म दूं।'

मेरा यह स्पष्टीकरण सुनकर आजतक किसीभी अभिभाव
के मुखसे नहीं सुने गये थे, ऐसे वचन उन्होंने कहे—'नहीं ज
मेरा मासिक वेतन दो सौ रुपये है। कटुम्बके आधे दर्जन स
स्योंका भरण-पोषण इसी आयसे करता हूं। इधर मेरे लिये
नया है। अतः पहला वेतन सब घरकी चीजोंके जुटानेमें खर्च
गया। अब चार दिनोंके बाद वेतन मिलेगा। आपको एतरा
न हो तो—''नहीं, नहीं, मुझे कोई एतराज नहीं है।' उन
कथनका मर्म समझकर मैंने उनका वाक्य पूरा नहीं होने दिय
'परन्तु बड़े-बड़े जमींदार और सेठ लोग भी अपने बच्चोंकी फी
माफ करवानेके फार्म भर गये है,' मैंने कहा।

वे बोले—'ठीक है, वे सरकारकी आंखोंमें धूल झोककर
सकते हैं, लेकिन मैं अपनी आत्माको कैसे धोखा दूं? इस प्रक
प्राप्त की हुई विद्या व्यर्थ होती है। ईमानदारीका निर्भय जी
ही सच्चा जीवन है।' मैंने उनकी आंखोंमें ईमानदारीके स्पष्ट द
किये। इतनेमें प्रार्थनाकी घंटी सुनायी दी। वे अभिवादन करते
उठ खड़े हुए और उन्होंने मेरे पाससे जानेकी अनुमति चाही। उ
जाते देखकर मेरा मन उनके प्रति नमित हो गया। 'अखण्ड आन

—मफतलाल सथव



गिद्धनीका सतीत्व

जिला सीतापुर त० मिश्रितके अन्तर्गत पवित्र तपोभूमि नैमिषारण्य एवं मिश्रित तीर्थके बीचमें एक गौआपुर नामक ग्राम है। खेतमें फसल कट जानेपर वर्तमान समय मैदान हो गया है। उसी स्थानकी यह सत्य एवं रहस्यपूर्ण घटना है। गत वैशाख पूर्णमासी शनिवार तदनुसार दिनाङ्क १९ मई सन् १९६२ ई० को खेतमें एक मृतक पक्षी गृद्ध पड़ा देखा गया, जिसपर मादा पक्षी गिद्धनी उस मृतक शवको अपने पखोंसे ढके बैठी थी। ग्रामके कुछ बच्चोंने उस गिद्धनीको

ईंटके ढेलोंसे मारा। पर वह अपनी जगह से नहीं हटी। तब बच्चे पकड़कर उसे ग्राम में ले आये, परन्तु ग्रामके निवासियोंने उसे छुड़वा दिया। वह गिद्धनी वहाँसे छूटकर पुनः मृतक गिद्धके शवके पास पूर्ववत् बैठ गयी। जब तीन-चार दिनोंतक यही क्रम रहा तो ग्रामके मनुष्य जाकर कौतूहलसे चरित्र देखने लगे। उस पक्षिणी का यह नियम था कि यदि कोई उसे छू लेता था तो वह स्नान करके पुनः अपने स्थानपर पूर्ववत् बैठ जाती थी। स्नानके लिये नहर समीपमें थी। उसने खाना और पीना बिल्कुल छोड़ दिया था। परन्तु यदि कोई मनुष्य आकर उससे यह कहता कि 'यह गङ्गाजल है' तो वह कुछ विचार कर गङ्गाजलको ग्रहण कर लेती थी। कोई झूठ ही पानीको गङ्गाजल कह देता तो उसे नही पीती थी। उस मृतक गिद्धके शवसे दुर्गन्ध भी नहीं आती थी। उसे देखने सभी प्रकारके लोग सरकारी उच्चाधिकारी भी आये, अनेकों प्रकारसे उसकी परीक्षा ली गयी; परन्तु वह परीक्षामें सफल हुई। इस प्रकार दो सप्ताह व्यतीत होनेपर गत ज्येष्ठ अमावस्या शनिवार दिनाङ्क २ जून सन् ६२ ई० को चार बजे उस पक्षिणीने भी प्राण त्याग दिये। प्रातः ज्येष्ठ प्रतिपदाको सर्वसम्मतिसे चिता बनाकर विधिपूर्वक दोनोंका दाह-संस्कार किया गया।

—ब्रह्मानन्द ठेकेदार

भागवतसे प्राणरक्षा

सन् १९६१ के जुलाई मासमें हैदराबाद (आन्ध्र-प्रदेश) में वहाँ भक्तोंके विशेष आग्रहसे काशीस्थ हथियाराम मठके अध्यक्ष महामण्डलेश्वर श्रीस्वामी बालकृष्ण यतिजी महाराजकी भागवतकी कथा और गीता-प्रवचनसे प्रभावित होकर उन्हींके तत्त्वावधानमें हैदराबादके घासीबाजारके वस्त्र-व्यापारियोंने हैदराबादमें गतवर्ष सितम्बरमें विश्वकल्याणार्थ 'श्रीविष्णुमहायज्ञ' का आयोजन किया था। उसके आचार्यत्वके लिये मैं काशीसे १० सितम्बर १९६१ को 'काशी-बम्बई एक्सप्रेस' से फर्स्टक्लासमें रवाना हुआ। मैं कहीं भी बाहर जाता हूँ तो मेरे साथ बहुत-सी पुस्तकें होती हैं, जिनके लिये एक स्वतन्त्र बक्स होता है। पुस्तकोंका उपयोग मैं रेलमें भी किया करता हूँ। मेरे डिब्बेमें फर्स्टक्लासकी एक ही सीट थी। मैं डिब्बेमें एकाकी ही था। बड़ी शान्तिसे ट्रेनमें पुस्तक पढ़ रहा था।

मुझे भलीभाँति स्मरण है कि रात्रिको लगभग बारह बजे जब गाड़ी कटनी स्टेशनसे रवाना हुई, तो उस समय मन्द-मन्द रिमझिम वर्षा हो रही थी, जो ट्रेनकी द्रुत गतिके कारण वायुसे टकराती हुई ट्रेनके झरोखोंमें प्रवेशकर मेरे मस्तिष्क-प्रदेशको विशेषरूपसे स्पर्श करने लगी, जिससे मुझे झपकी आ गयी। डेढ़ बजे जबलपुर स्टेशनपर आवश्यकतासे अधिक मेरे डिब्बेका दरवाजा खटखटाया गया, जिससे मेरी नींद उचट गयी। मेरे डिब्बेके सामने दो कथित सभ्य नवयुवक खड़े थे, जो मेरे डिब्बेमें घुसना चाहते थे। मैंने बार-बार मना किया कि 'इसमें सिर्फ एक ही सीट है, आपलोग दूसरे डिब्बेमें जायँ।' वे बोले—'हमारे पास फर्स्टक्लासकी टिकट है। फर्स्टक्लासके दूसरे डिब्बेमें जमीनमें खड़े होनेतककी भी जगह नहीं है। बहुत जरूरी कार्यसे सिर्फ दो ही स्टेशन जाना है। आपको किसी प्रकारका कष्ट नहीं देंगे। बर्थके नीचे जमीन-पर बैठ जायँगे।' मैंने दोनोंकी नम्रतापूर्ण बातें सुन डिब्बेका दरवाजा खोल दिया और वे दोनों नवयुवक डिब्बेमें घुस गये। उनमेंसे एकने एक तौलिया जमीनपर बिछा दिया और उस-पर दोनों बैठ गये। उनके पास बिस्तर, बक्स आदि कोई सामान नहीं था। सिर्फ एकके पास चमड़ेका एक छोटा-सा 'बेग' था।

गाड़ी जबलपुरसे चल दी। मैं लाइट बन्द करवाकर निश्चिन्त हो अपनी सीटपर लेट गया। सम्भवतः एक घण्टा बीता होगा कि उन दोनों नवयुवकोंकी धीमी-धीमी बातोंकी

सुरसुराहटसे और बिजलीकी बत्ती जलानेसे मेरी नींद उचट गयी। मैं ज्ञानपूर्वक अचेतन-सा पड़ा बातें सुनने लगा। एक बोला—लालाजीके बक्समें बहुत वजन है। मालूम होता है, सोने-चाँदीके व्यापारी हैं। बक्समें सोने-चाँदीके सिक्के होंगे, जन्हें लेकर लालाजी व्यापारार्थ बम्बई जा रहे हैं।' दूसरेने कहा—'देखते क्या हो, जल्दीसे बेगमेंसे 'छूरा' निकालकर इनका काम तमाम करो और बक्स लेकर अगले स्टेशनपर उतर भागो।' पहला बोला—'जल्दी मत करो, समझ-बूझकर मारा जाय। एक बार हमलोगोंसे नासमझीके कारण एक आदमीकी हत्या हो गई थी, किन्तु उसके पास कुछ नहीं निकला। इस बार फिर वैसी ही भूल न हो जाय।'

मैं पड़ा-पड़ा यह भयंकर विचार-परामर्श सुन किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया और तरह-तरहकी बातें सोचने लगा।

'यं हि रक्षितुमिच्छति भगवान् त सद्बुद्ध्या संयोजयति'

—इस न्यायके अनुसार भगवत्कृपासे मेरी बुद्धि भगवन्नाम-स्मरणकी ओर प्रवृत्त हो गयी और मैं अशरणशरण भगवान् वासुदेव (श्रीकृष्ण) का श्रद्धा-भक्तिसे मन-ही-मन स्मरण करने लगा और गीताके **'यो मां पश्यति सर्वत्र०'** (६ । ३०) तथा **'तेषामहं समुद्धर्ता०'** (१२ । ७) और भागवतके **'संजीवयत्य-खिलशक्तिधरः स्वधाम्ना०'** (४ । ९ । ६), **स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्०'** (५ । १८ । ९) एवं **'हरिस्मृतिः सर्वविपद्-विमोक्षणम्'** (८ । १० । ५५) आदि श्लोक गुनगुनाने लगा।

भगवन्नामसूचक गीता और भागवतके श्लोकोंको बार-बार दोहरानेसे चित्तकी व्याकुलता कुछ कम हुई और मुझमें आत्मबल, ढाढ़स बँधने लगा। मैं बड़ी निष्ठासे मन-ही-मन भवभयहारी भगवान्‌की गुहार करने लगा।

इसी बीच एक नवयुवकने मेरा अङ्ग स्पर्श करते हुए जोरसे आवाजदी—'लालाजी उठिये।' मैं उठ बैठा और मैंने उनसे कहा—'कहिये, क्या बात है?' वे बोले—'आपका बक्स बहुत वजनी है, क्या सोने-चाँदीके सिक्के बम्बई ले जा रहे हैं? बक्सकी ताली दीजिये, हम खोलकर देखना चाहते हैं।' मैंने कहा—'ताली लेनेसे पूर्व मेरी बातें ध्यानसे सुन लें। पीछे आप चाहेंगे तो मैं स्वय ही बक्स खोलकर दिखला दूँगा।' एकने कहा—'अजी, ये सीधे ताली नहीं देंगे, बेगसे छूरा निकालकर इनका काम तमाम कर दो, रास्ता साफ हो जायगा।' दूसरेने कहा—'पहले लालाजीकी बात सुन लो, यह हमारे पजेमें जकड़े हुए हैं। कहाँ भागे जा रहे है?' फिर दोनों बोले—'लालाजी! आप जो कहना चाहते हैं, कहिये।'

मैंने कहा—'मैं लाला (सेठ) नही, ब्राह्मण हूँ और मेरे बक्समें सोने-चाँदीके सिक्के नहीं, बल्कि उनसे भी अधिक मूल्यवान् सिक्के है, जो आपके कामके नहीं हैं। मैं बम्बई नही, हैदराबाद दक्षिण यज्ञ कराने जा रहा हूँ। आपलोग भ्रमवश मेरी हत्या करके केवल पश्चात्तापके भागी बनेंगे, हाथ कुछ न लगेगा।' मैंने बक्सकी ताली एक नवयुवकके हवाले कर दी। उसने बक्स खोलकर देखा तो उसे सबसे

ऊपर गीताप्रेस, गोरखपुरकी मुद्रित सचित्र सजिल्द मोटे अक्षरवाली मूल मात्र छः रुपयेवाली श्रीमद्भागवत और काशीस्थ गोयनका संस्कृत महाविद्यालयके पुराणविभागाध्यक्ष पं० श्रीराममूर्ति शास्त्रीद्वारा रचित सचित्र और सजिल्द दस रुपयेवाली 'श्रीमद्भागवत कथा (साप्ताहिक)' की पुस्तक दिखायी दी। पश्चात् उस नवयुवकने बक्सको ऊपरसे नीचे-तक टटोलकर देखा, तो उसमे पुस्तकें भरी दिखलायी दीं। लज्जित और सकुचित हो वह अपने साथीसे बोला—'इसमें तो सभी धार्मिक पुस्तकें हैं। निश्चय ही ये पण्डित हैं। इन्हें व्यर्थ परेशान होना पड़ा, अतः क्षमा माँगकर हमें अगले स्टेशनपर उतर जाना चाहिये।' दोनोने अपनी गलतीके लिये बारम्बार क्षमा माँगी। मैंने हँसते हुए कहा—'क्यों भाई! मेरी बातपर ध्यान दिया या नही? मैंने कहा था कि बक्समें सोने-चाँदीसे भी मूल्यवान् सिक्के हैं। यदि मेरे पास सांसारिक सिक्के होते तो आज मेरी जान खतरेमे थी; किन्तु मेरे भागवतरूपी सिक्के देखते ही आपलोगोके कुत्सित विचार सात्त्विक बन गये।'

दोनो नवयुवक मेरी बातें सुनते रहे। निरुत्तर हो संकोचके साथ बोले—'पण्डितजी! हमें कुछ उपदेश दीजिये।' मैंने पूछा—'आपलोग किस जातिके है?' उन्होने कहा—'यवन।' मैंने पूछा—'लोभवश किसीकी जान ही लेना जानते हैं या जिलाना भी?' उत्तरमें उन्होने कहा—'जिलानेकी ताकत तो खुदामें ही है, हमलोगोमें नही।' मैंने कहा—'यदि जिला नहीं सकते तो किसीको मारनेका भी अधिकार नहीं। अतः खुद

खुदा बनकर पाप न बटोरिये। किसीका उपकार नहीं कर सकते तो किसीको हानि भी न किया करें। प्राणिमात्रपर दया और प्रेमभाव रखते हुए सबको अपने-जैसा समझें। लूट-पाट एवं जीवहत्या-जैसे जघन्य पापोंसे दूर रहकर सर्वदा मानवताका आदर करें। यही मेरा उपदेश है।'

दोनों नवयुवक नीची गर्दन किये विनम्र भावसे बोले—'पण्डितजी ! खुदाकी कसम, हमलोग आजसे आपके बतलाये रास्तेपर चलेंगे और जीवनभर लूट-पाट और कतल नहीं करेंगे।' इतनेमें ही 'पिपरिया' स्टेशन आ गया। वे दोनों नवयुवक मुझको हाथ जोड़कर स्टेशनपर उतरकर चले गये।

उनके जानेके बाद देरतक मेरे मनमें तरह-तरहके विचार उठते रहे। अन्तमें इसी निष्कर्षपर पहुँचा—'जो मनुष्य 'वासुदेवः सर्वमिति' (गीता ७।१९) का सिद्धान्त मान भगवान्-पर पूर्ण भरोसा रखते और सदा उनका स्मरण-चिन्तन करते हैं, उनकी वे सर्वत्र रक्षा करते हैं। मेरे पास भगवत्स्वरूप 'भागवत'की जो पुस्तक थी, वही मेरे लिये हितकर सिद्ध हुई, जिसको देख उन कलिकलुपित आततायी नवयुवकोंके विचारमें अद्भुत परिवर्तन हो गया, जिससे मेरे प्राणोंकी रक्षा हुई।'

क्या अब भी 'कलौ भागवती वार्ता', 'कलौ भागवत स्मृतम्' की सत्यताके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता है ?

—याज्ञिक-सम्राट् श्रीवेणीराम शर्मा गौड़, वेदाचार्य

मर जाता, तब तो सदा के लिये अमर ही हो जाता

कई वर्षों पहलेकी बात है। भगवती कामाख्यादेवीके दर्शनार्थ मै गौहाटी (आसाम) में अपने गाँवके एक परिचित सज्जनके यहाँ ठहरा हुआ था। एक दिन एक आदमीने आकर मेरे उन परिचित सज्जन से कहा—'आपको पता तो होगा ही, मेरी दूकान तो उस दुष्ट ने कुर्क करवा दी।' इसपर मेरे परिचित भाईने उनसे कहा—'रुपये तो आप दे चुके थे न?' उसने कहा—'जी हाँ, रुपये तो मैने दे दिये थे, पर उस समय हैंडनोट वापस नहीं लिये थे। विश्वास था ही; सोचा, पीछे ले लेंगे। मेरे सीधेपनका यह नतीजा है कि दस हजार रुपयेकी

नालिश करके मेरी दूकानतकको कुर्क करवा दिया गया। मैं कुछ रुपयोंकी आवश्यकता होने से आपके पास आया हूं।' उनकी यह बात सुनकर मेरे परिचित सज्जन मुझसे कहने लगे—"देखिये पण्डितजी ! हमलोग पूरी तरह जानते हैं कि रुपये दे दिये गये हैं। खुद महाजनका एक नौकर ही मुझसे कह रहा था कि 'हमारे मालिक बड़े बेईमान है, हमलोग क्या करें। ये बनारसके रहनेवाले बड़े ही सज्जन हैं। इनका नाम श्री'''गुप्त है।" इस प्रकार मुझसे कहकर उनसे कहा—'गुप्तजी ! अभी आप जाइये, हम यथाशक्ति अवश्य आपकी मदद करेंगे। इस समय इन पण्डितजी के साथ बाबा उमानाथजी के दर्शन करने जा रहे हैं। आप शामको अवश्य मिलियेगा।' इसपर गुप्तजीने कहा—'चलिये हम भी चलते हैं।' तदनन्तर हम तीनों श्रीमहादेवजीका नाम लेकर चल पड़े। ब्रह्मपुत्रमें नावपर बड़ी भीड़ थी, मल्लाह डर रहा था। पर महादेवजीके दर्शनार्थ जानेवाले यात्री निडर-से थे।

कुछ देर नावके चलनेपर गुप्तजीने चुपकेसे मेरे कानमें कहा—'पण्डितजी ! हाथमें चाँदीका जलपात्र लिये जो दीख रहे हैं, यही मेरे वे महाजन बाबू हैं और पीली साड़ी पहने गोदमें बालक लिये जो देवी बैठी है, वे इनकी पत्नी हैं।' महाजन बाबूका शीलस्वभाव जाननेके लिये मैंने उनसे पूछा—'आप क्या नित्य महादेवजीका पूजन करने जाया करते है ?' उन्होने गुप्तजीकी ओर देखकर अभिमानसे कहा—'नही, यह तो एक मुकदमेमें हमें दस हजारकी डिक्री मिली है, उसीके उपलक्ष्यमें हम सपरिवार बाबाका पूजन करने जा रहे हैं।'

चुप रह गया।

ब्रह्मपुत्रकी धारामें यह सुन्दर पहाड़ कितना आनन्द दे रहा मैं यह सोच रहा था कि नाव पहाड़के समीप पहुँच गयी। ा उतरनके लिये जल्दी करने लगे। संयोगवश महाजन बूकी पत्नीका पैर फिसल गया और वे नीचे गिर गयीं। ो बीच बच्चा उनके हाथसे छूटकर जलमें गिर पड़ा और व धार में बह चला। माता-पिता रोने-चिल्लाने लगे, परन्तु सी से कुछ करते न बन पड़ा। पर लड़का जिस समय रा था, उसी समय उसके साथ ही एक युवक ब्रह्मपुत्रमें गया था। कुछ ही क्षणोंमें कुछ दूर जलमें देखा गया कि ण अपने एक हाथसे पानी मार रहा है और दूसरे हाथसे र लडकेको थामे हुए है। वह अब-तब डूबनेकी स्थितिमें परन्तु किनारेकी ओर जानेके लिये जीतोड़ कोशिश कर ा है।

संयोगवश एक मल्लाहकी नजर उसपर पड़ी, वह तुरन्त व लेकर वहाँ पहुँच गया और लड़केसहित उस युवकको वपर चढ़ा लिया। इतनेमें कई नाविक और भी पहुँच गये। व किनारेपर आ लगी। सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गये। र दोनोंको बचानेके लिये डाक्टरोंने उपचार शुरू कर दिये। नोंके पेटमें जल बहुत कम गया था, अतः उपचार किये नेपर दोनों ही बहुत शीघ्र स्वस्थ हो गये।

महाजन बाबू और उनकी पत्नी दोनों उस साहसी वीर वकको बार-बार धन्यवाद दे रहे थे। वह युवक वे गुप्तजी

ही थे, जिनपर इन महाजनने झूठा मुकदमा चलाकर नि
करवायी थी। महाजनकी पत्नीने अपने पतिसे कहा—'देखि
ऐसे परोपकारी आदमीका आपने सर्वस्व हरण कर लिए
अब आप डिक्रीके रुपये तो छोड़ ही दीजिये, साथ ही प
हजार रुपये पुरस्कारके और दीजिये। इन्होंने अपने प्र
खतरेमें डालकर बच्चेकी जान बचायी है। हमलोग
परोपकारी युवकसे इतना देकर भी उऋण नहीं हो सकते।

उनकी यह बात सुनते ही हमारे गुप्तजी उनसे बोले
'देवीजी! मैंने पुरस्कार पानेके लिये यह काम नहीं किया है
मरते प्राणीको बचानेकी कोशिश करना मानवधर्म है,
वही किया है।' इसके पश्चात् महाजन बाबू तथा उन
पत्नी दोनों ही रुपये लेनेके लिये गुप्तजीसे बड़ा आग्रह क
लगे, परन्तु उन्होंने कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया। इ
बाद महाजन बाबू डिक्रीके रुपये छोड़ देनेका विचार लोगों
सुनाकर अपने घर लौट गये। हम तीनों भी लौटकर अ
स्थानकी ओर चले। रास्तेमें मैंने गुप्तजीसे पूछा—'ऐ
बेईमानके लिये आपने यह काम क्यों किया?' वे बोले
'बेईमान तो वह है, उसका लड़का तो बेईमान नहीं है
इसपर मैंने कहा—'अगर आप मर जाते?' उन्होंने कहा
'मर जाता तब तो जगत्‌में जन्म लेकर सदाके लिये अमर हो
जाता। मानव-जन्म सफल हो जाता। मनुष्यका प्रधान धर्म
ही है परोपकार करना।'

—पं० रामविलास मिश्र, कथावाचक



व्यापारीकी ईमानदारी

कुछ वर्षों पहलेकी घटना है। कच्छ मांडवीमें एक व्यापारी रहतेथे। 'ईमानदारी हमारा मुद्रालेख है' ये शब्द उन्होंने केवल तख्तीपर नहीं खुदवा रक्खे थे, वरं उनके हृदयमें अङ्कित थे। मांडवीभरमें उनकी सचाईकी प्रसिद्धि थी। उनके कपड़ेकी दूकान

थी। एक बार उन्होंने जहाजी मार्गद्वारा जामनगरसे रेश
साड़ियाँ मँगवायीं। जहाज पहुँच गया, पर रसीद (बिल्टी) अ
नहीं पहुँची। साड़ियोंके ग्राहक आ जानेके कारण इन्हें साड़ियो
जरूरत हो गयी। इन्होंने अपने मुनीमके हाथ कस्टम अफसर
पत्र लिख दिया। सरकारी अधिकारियोंपर भी इनके स
आचरणकी छाप थी, अतः बिना ही रसीदके माल छोड़ दि
गया। उस समय बाहरसे आनेवाले मालपर जकात लग
थी। रेशमी कपड़ेपर जकात ज्यादा थी, सूतीपर कम। इसलि
जकातके पैसे भरते समय मुनीमने पैसे बचानेकी नीयतसे रेश
के बदले सूती साड़ी लिखवा दी और पैसे भरकर वह साड़ि
दूकानपर ले आया। मालिकने जकातके पैसे कम लगे देखक
बात पूछी। मुनीमने कहा—'मैंने पैसे बचानेके लिये सूती सा
लिखवा दी थी।' इसको सुनकर मालिक खुश तो हुए ही नहं
उलटे नाराज होकर बोले कि 'अब आगेसे ऐसी बेईमानी करों
तो तुमको दूकानसे निकाल दिया जायगा। पैसोंकी अपेक्षा अप
सचाई तथा इज्जतका मूल्य बहुत अधिक है।' मुनीमने क्षम
माँगी। मालिक जकातकी रसीद लेकर तुरन्त जकातअफसरं
पास गये और सारी बातें समझायीं। सूती कपड़ेसे रेशमी
जकात चौगुनी थी। उन्होंने पूरी जकात भर दी। अफसर इनर्क
ऐसी ईमानदारी देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और मन-ही-मन
कहने लगे—'काश! भारतके सभी व्यापारी ऐसे ही ईमानदार
होते तो!' (अखण्ड आनन्द)

—जैनधर्म



पेट-दर्दकी चमत्कारी दवा

करीब आठ साल पहलेकी बात है। मैं माल खरीदनेके लिये मद्रासकी ओर गया हुआ था। सेलममें मेरे पेटमें दर्द हो गया और वह स्थायी-सा बन गया। मैंने जोधपुर लौटकर करीब नौ महीनेतक वैद्यो-डाक्टरोंके इलाज करवाये पर जरा भी लाभ नहीं हुआ। डाक्टरोंने जलोदरकी बीमारीकी आशङ्का कहकर रोगको खतरनाक बतलाया। पैसेकी तंगी थी, मैंने इलाज छोड़ दिया। तदनन्तर दर्द बहुत बढ़ गया। मैंने सोच लिया अब भगवान्‌के सिवा इस दर्दको दूर करनेवाला और कोई नही है। मैंने एक दिन घरमे ऊपर जाकर एक घण्टे नाम-जप किया। अन्तमें भगवान्‌से कातर प्रार्थना की। फिर नीचे आनेपर भगवत्प्रेरणासे मेरी इच्छा बाजार जानेकी हुई और मैं बाजारकी ओर चल दिया। मैं दर्दके मारे पेटपर हाथ फेरता जा रहा था। राह चलते एक अनजान व्यक्तिने पूछा—'सेठजी! पेटपर हाथ क्यों फेर रहे हैं?' मैंने नीचे बैठकर उसे सारी घटना सुनायी। वह बोला—'मैं दवाई बता रहा हूँ। सात दिनोंतक सेवन करोगे

तो अच्छे हो जाओगे।' मैंने कहा—'मैं पैसेवाली बहुत दवाइयाँ करके हैरान हो गया हूँ।' उसने कहा—'मैं बिना पैसेकी दवा बता रहा हूँ।' मेरे फिर पूछनेपर उसने कहा—'मोठको पीसकर आटा बना लीजिये। फिर उस आटे की एक मोटी रोटी बनाकर एक तरफसे सेंक लीजिये। रोटीकी कच्ची ओर तिलका तेल चुपड़कर पेटपर बाँधकर सो जाइये। फिर चार बजे उठकर करीब आधा पाव गो-मूत्रका सेवन कीजिये। तदनन्तर गेहूँ आध सेर चक्कीमें पीस लीजिये। यों सात दिनोंतक करनेपर भगवत्कृपासे आप ठीक हो जायँगे।' इतना कहकर वह चल दिया।

मैंने घर आकर पत्नीसे यह बात कही। उनको भरोसा नहीं हुआ, इससे एक दिन और निकल गया। दूसरे दिन मोठ पिसवाकर उसके आटेकी मोटी रोटी बनवायी और एक ओर तिलका तेल चुपड़कर उसे बाँधकर सो गया। चार बजे उठा और घनश्यामजीके मंदिरके समीप जाकर ताजा गो-मूत्र गिलासमें लेकर पी गया। फिर घर आकर चक्कीमें गेहूँ पीसना चाहा, पर कमजोरीके कारण अकेलेसे चक्की चल नहीं पायी। तब पत्नीको साथ बैठाकर पीसा। शामको शौचके बाद चार आने लाभ मालूम हुआ। चार दिनोंमें मेरी सारी बीमारी जाती रही और भगवान्‌की कृपासे फिर अब-तक उसका कहीं कोई नाम-निशान भी नहीं है।

—गोपीकिशन बिड़ला, डागा बाजार, सारडाकी गली, जोधपुर



आदर्श परोपकार और कर्तव्य-पालन

गत मई मासमें गिरीडिहके मकनपुर मुहल्लेमें एक धोबीके मकानमें एकाएक उस समय आग लग गयी, जब वह पेट्रोलसे गरम कपड़े धो रहा था। अग्निने तुरन्त प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। गिरीडिह पुलिसके हवलदार श्रीशीशनारायण सिंह अग्निकी ज्वालामें बड़ी दिलेरीके साथ कूद पड़े और घर के अन्दरसे एक बालकको आगकी लपटोंमेंसे बाहर निकाल लाये। पुलिस हवलदार और बालक दोनों जलकर घायल हो गये, लेकिन हवलदारकी हिम्मतका उपस्थित जनतापर यह प्रभाव पड़ा कि धोबीकी शेष चीजोंको जलनेसे लोगोंने बचा लिया। घायलोंको चिकित्साके अस्पतालमें भेज दिया गया।

—वल्लभदास बिन्नानी



सन्तकी दयालुता

चित्रकूटमें श्रीरामनारायणजी ब्रह्मचारी नामक एक प्रसिद्ध सन्त हो गये हैं। उनके जीवनकी दो छोटी-छोटी घटनाएँ हैं, जिनसे सन्त हृदयका परिचय मिलता है। जिस समयकी घटनाका वर्णन है, सन्तजी चित्रकूटमें राम-शय्या (बिहाराग्राम) के पास कुटी बनाकर रहते थे। बादमें सन्तजी सिरसावन चले गये थे।

कुटीमें सन्तजी और उनका एक ब्रह्मचारी शिष्य, दो व्यक्ति निवास करते थे। चैत्र-वैशाखके दिन थे। सन्तजीने पानी पीनेके लिये एक छोटी-सी कुइयाँ (मिट्टीका कच्चा कुआँ) खोद रक्खा था। फसल कटना आरम्भ हो गया था। बिटाराके कुछ ब्राह्मणोंका खलिहान कुटीसे थोडी ही दूरपर रहता था। कुछ ब्राह्मण आये और खलिहान रखनेकी जगह साफ करने लगे। तत्पश्चात् खलिहानकी लिपाई प्रारम्भ हुई। खलिहान गोबरसे लीपा गया। सारा पानी आया सन्तजीकी कुइयाँसे और पानी लेते समय ब्राह्मणोंने बड़ी असावधानी

बरती। फलस्वरूप कुइयाँका सारा पानी गोबरमिश्रित हो गया। पीने योग्य बिल्कुल न रह गया। शिष्य ब्रह्मचारीने संतजीसे ब्राह्मणोंके कारनामे सुनाये। सुनकर संतजीने कहा—'ब्राह्मणोंसे कुछ न कहना, दूसरी कुइयाँ तैयार कर लेंगे, और उसी गरमीमें संतजी और उनके ब्रह्मचारी शिष्यने दूसरी कुइयाँ खोदकर तैयार करली। कुछ दिनों पश्चात् उस दूसरी कुइयाँमें भी बरोंने अपना छत्ता बना लिया और पानी भरते समय उड़कर काटने लगीं। ब्रह्मचारी शिष्यने फिर संतजीसे कहा, सुनकर संतजीने कहा —'उनको मत छेड़ना, फिर दूसरी कुइयाँ तैयार कर लेंगे।' और संतजी तथा उनके ब्रह्मचारी शिष्यने उसी गरमीमें तीसरी कुइयाँ खोदकर तैयार कर डाली।

संतजी किसीसे कुछ लेते नही थे, सबसे अत्यन्त नम्रतापूर्वक व्यवहार करते थे। एक बार एक धनी सेठ आये और संतजीसे कुछ ग्रहण करनेका आग्रह करने लगे। संतजी अत्यन्त नम्रतापूर्वक यही कहते रहे— 'किसी निर्धनको दे दो, भाई! मेरी तो सारी अवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं।' अन्तमें सेठने भूमिपर लेटकर प्रार्थना की, संतजी भी उसी प्रकार नम्रतापूर्वक भूमिपर लेटकर इन्कार करते रहे। दृश्य दर्शनीय था*।

—शिवगणेश पाण्डेय, बी० ए०



* श्रद्धेय ब्रह्मचारीजी सचमुच आदर्श संत थे। किसीसे कुछ लेते नहीं थे। आवश्यक अन्न खेती करके उपजा लेते थे। उसीसे खाने-पीने, अतिथि-सत्कार करने तथा कपड़े-लत्तेका काम चलाते। बड़े ही त्यागी, संयमी और ज्ञानी महात्मा थे।—सम्पादक

पिउनसे मैनेजर

अबसे प्राय: ३२ वर्ष पूर्वकी बात है, मैं कलकत्तेके प्रसिद्ध काली-मन्दिरमें बैठा हुआ था। कुछ देरके बाद दो आदमी आये। एकके हाथमें एक पुस्तक और एकके हाथमें पूजाकी सामग्री थी। पुस्तकवाला आदमी भीतर मन्दिरमें जाकर पाठमें संलग्न हो गया और सामानवाला मेरे समीप आकर बैठ गया। मैंने पूछा—'आपके साथ आनेवाले कौन हैं ?' उस आदमीने कहा—'इस समय इसी शहरमें एक धानकी मिलमें मैनेजर हैं।' मैंने पूछा—'इस समयका क्या अर्थ है, इससे पहले क्या थे ?' इसपर उसने कहा कि 'इससे पहले ये इसी धान-मिलमें पिउन थे।' पुन: विशेषरूपसे इस विषयको मै वही लिख रहा हूँ।

'मैनेजर साहब मुजफ्फपुर जिलेके रहनेवाले है। इनका नाम है '- × × मिश्र।' मिश्रजी इसी मिलमे उन्नीस रुपये मासिक वेतनपर पिउनका काम करते थे। आजसे आठ वर्ष पहलेकी बात है। मिश्रजी छुट्टी लेकर अपने घर जा रहे थे। रेलके जिस डिब्बेमें मिश्रजी बैठे थे, उसी डिब्बेमें इनके समीप ही एक 'सेठजी' भी बैठे थे। देवघर स्टेशनपर सेठजी गाड़ीसे उतर गये और एक लाल रगका गजिया छोड़ गये। मिश्रजीने सेठजीको पुकारा, किन्तु विशेष भीड़ होनेके कारण सेठजी सुन न सके। कोई अन्य व्यक्ति दखल न देने लगे, इसलिये मिश्रजीने उस गजियेको लेकर तुरन्त छिपा दिया। देरके बाद कुछ घबराये हुए सेठजी उस डिब्बेमें आकर पूछने लगे—'भाइयो! आपलोगोने एक गजिया देखा है क्या ?' यह सुनकर मिश्रजीने सेठजीसे पूछा

कि 'गजिया किस रंगका है और उसमें क्या चीज है?' सेठजीने बताया कि 'गजिया लाल रंगका है और उसमें दस हजारके नोट है, नौ हजारके सौ-सौ रुपयेके और एक हजारके दस-दस रुपयेके है।' विश्वास हो जानेपर मिश्र जीने सेठजीके हाथमे गजिया देकर कहा कि 'अपने नोट गिन लिजिये । हमने तो आपको पुकारा था, किन्तु आपने सुना नही, हम इसी उधेड़-बुनमें थे कि क्या करे, तबतक आप आ ही गये।' फिर सेठजीने नोट गिने। नोट ज्यों-के-त्यों पूरे थे। तदनन्तर सेठजीने पाँच सौ रुपये मिश्रजीको पुरस्कार देता चाहा; किन्तु मिश्रजीने साफ इन्कार कर दिया और कहा कि 'सेठजी! ये रुपये आपके थे, हमने आपको दे दिये, इसमें पुरस्कारकी कौन-सी बात है। हम न देते तो बेईमानी थे; किसीकी चीज उसे दे देना तो मानवतामात्र है। इसमे बड़ाई क्या है?' अन्तमें सेठजीने मिश्रजी-का पूरा पता जानना चाहा; किन्तु मिश्रजीने केवल इतना ही बताया कि 'मै मुजफ्फरपुर जिलेका रहनेवाला एक गरीब ब्राह्मण हूँ। एक धानकी मिलमें पिउनका काम करता हूँ । इससे विशेष परिचय देनेसे लाचार हूँ।' तदुपरान्त मिश्रजीको धन्यवाद देकर सेठजी चले गये और मिश्रजी भी अपने घर चले गये।

अब हम इसके दो वर्ष बादकी बात कह रहे है—मिश्रजी सचाईके साथ मिलमें काम कर रहे थे। ये ईमानदार, सच्चे, सहृदय, बड़े बुद्धिमान, पढ़े-लिखे तथा कार्य-निपुण थे, भाग्यवश ही पिउनकी छोटी नौकरी कर रहे थे। किन्तु छोटेसे लेकर

बड़ेतक सभी कर्मचारी इनसे कुछ नाराज रहा करते थे। इसका प्रधान कारण यह था कि इनके रहते उन लोगोके मनमें सदैव खटका बना रहता था। वे मनमानी नही कर पाते थे। एक दिन एक प्रधान कर्मचारीने दो-चार कर्मचारियोंके साथ मिल-की केस-बक्सका ताला तोड़ दिया। उसमेंसे पाँच हजार रुपयेके नोट निकाल लिये और मिश्रजीका नाम लगा दिया। प्रधान कर्मचारीने अपने मेलके कुछ लोगोंसे यह कहला भी दिया कि 'इन्हे इस घरसे काँखमें कुछ दबाये निकालते, घबराये जाते हुए हमलोगोंने देखा है।' अब मिश्रजीको बचानेके लिये कोई भी उपाय न रहा।

मिल-मालिकने मिश्रजीसे कहा कि 'मिश्रजी! आप तुरन्त रुपये दे दीजिये, अन्यथा आपपर पुलिससम्बधी कार्रवाई की जायगी।' संयोगवश इसके दूसरे दिन उपर्युक्त उन्ही सेठका (जिनकी देवघरस्टेशनपर मिश्रजीसे भेंट हुई थी)एक कर्मचारी कार्यवश उसी मिलमें गया था, उसने सारी बातें सुनी और लौट-कर पाँच हजार रुपयेके गायब होने तथा ·· मिश्र पिउनपर चोरीका अभियोग लगनेकी बात सेठको सुनायी। समाचार सुनते ही सेठजी अवाक् रह गये और सोचने लगे कि 'कहीं वह अपूर्व त्यागी ब्राह्मण ही तो नही है। वह मिलमे पिउनका काम ही तो करता था। आजकल ऐसे सच्चे व्यक्तियों को लोग अपना काम निकालनेके लिये द्वेपवश खासकर फँसाया करते हैं। खैर, जो हो देख ही क्यों न ले।' यों सोचकर सेठजी दस हजार रुपयेके नोट अपने पास लेकर तुरन्त उस धानकी मिलमें पहुँच

गये और पता लगाकर मिश्रजीसे भेटकर सारा हाल जान लिया। सेठजी कर्मचारियोके षड्यन्त्रकी बात सुनकर बड़े दुखी हुए और तुरन्त मिलमालिकसे भेट करने चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होने मिलमालिकसे पूछा कि 'आपकी समझमें········ मिश्र चोर है क्या ?' इसपर मिलमालिकने कहा कि 'इसमें क्या सन्देह है, वह अवश्य चोर है। उसे रुपये ले जाते लोगोंने देखा है। उसे समझाया जा रहा है। रुपये न देनेपर हम उसे अवश्य जेल भिजवा देगे।' इस प्रकार रूखा उतर सुनकर सेठजीने पाँच हजारके नोट देते हुए कहा कि 'लीजिये, आपके पाँच हजार रुपये। अब तो वह छूट सकता है न ?' मिल-मालिकने रुपये लेकर पूछा—'किन्तु आप ये रुपये क्यों दे रहे हैं ?' मेरे यहाँ उसके रुपये जमा थे और मै यह निस्संकोच कह सकता हूँ कि वह चोर कदापि नहीं है। वरं ऐसा सच्चा आदमी संसारमें मिलना दुर्लभ है। आपमें अच्छे-बुरेकी पहचान करनेकी शक्ति नहीं है।' सेठजीने कहा। मिलमालिक और कुछ बाते करनेकी बाट देखते ही रह गये और सेठजी तुरन्त वहाँसे उठकर मिश्रजीके पास चले आये। मिश्रजी इस विषयमें कही विशेषरूपसे पूछ-ताछ न करे, इस अभिप्रायसे आते ही कहा कि 'आप तुरन्त मेरे साथ चलिये, अब किसी प्रकारका झंझट नही है।'

सेठजी मिश्रजीसे यह कह ही रहे थे कि बाजारमे शोरगुल होने लगा 'चोर पकड़ा गया ?' 'चोर पकड़ा गया ?' इस प्रकारका शोरगुल सुनकर सेठजीने बाहर जाकर लोगोसे पूछा, तब उन्होंने बताया कि 'नाम लगाया गया बेचारे मिश्रजीका

और पकड़े गये हैं अमुक प्रधान कर्मचारीजी ।' सेठजीके द्वारा पुनः विशेषरूपसे पूछे जानेपर उन लोगोंने कहा कि 'प्रधान कर्मचारीजी अपनी स्त्रीकी बीमारीका तार घरसे मँगाकर एक सप्ताहकी छुट्टी लेकर घर जा रहे थे। स्टेशनपर लोगोंकी नजर बचाकर वे बार-बार रुपयोंको देख रहे थे। मिलमें चोरी होनेका हाल पुलिसको मालूम था । अतः एक सिपाहीके मनमें शक हुआ । प्रधान कर्मचारीजी गिरफ्तार किये गये और उनके पास मिलकी मुहर लगे हुए नोट भी पाये गये है ।'

इन सब बातोंको सुनकर सेठजी, मिश्रजीको साथ लिये जो अपने घर जा रहे थे सो घर न जाकर, मिलमालिकसे मिलनेके लिये चले गये । सेठजीको देखते ही मिलमालिकने बड़ी नम्रतासे कहा कि 'सेठजी ! आपका कहना सत्य है, सच-मुच मुझमें आदमी पहचाननेकी शक्ति नही है । आप रुपये ले लीजिये ।' साथ ही मिश्रजीसे कहा—'मिश्रजी ! आप मेरा अपराध क्षमा करें ।' इसपर मिश्रजीने कहा कि 'आप इस बातके लिये निश्चिन्त रहे । मेरे मनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं है ।' इसके बाद सेठजीने कहा—'ये रुपये आप मिश्रजी-को ही दे दीजिये । मेरे जिम्मे तो अभी इस देवरूप मानवके पाँच हजार रुपये और है ।' मिल-मालिकने रुपये मिश्रजीको देना चाहा, सेठजीने भी बार-बार अनुरोध किया; परन्तु मिश्र-जीने सर्वथा अस्वीकार कर दिया । तब सेठजीको ही रुपये वापस लेने पड़े ।

मिल-मालिकने सेठजीको इतनी सहानुभूति, दयालुता और

प्रीति मिश्रजीके प्रति देखकर इसका कारण जानना चाहा। तब सेठजीने देवघर स्टेशनकी (दस हजार रुपये को भूल जाने और मिश्रजीके द्वारा उन्हें लौटानेकी) बीती बातोंको सुनाकर मिल-मालिकके साथ ही वहाँ उपस्थित जन-समुदायको आश्चर्यचकित कर दिया। इन सब बातोंको सुनकर मिल-मालिकके मनमें मिश्रजीके प्रति अटूट श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। उन्होंने सेठजीके सामने ही मिश्रजीसे कहा—'मिश्रजी ! हम अपने घोर अपराधोके लिये बार-बार आपसे क्षमा चाहते है। आपके प्रति हमने बड़ा अन्याय किया है, आप क्षमा कीजिये। साथ ही आपसे एक बात और कहना चाहते है। आप उस बातको अवश्य स्वीकार करें। कहना यह है कि दूसरे कारोबार विशेषरूपसे बढ़ जानेके कारण हम आजकल बहुत व्यग्र रहा करते है। अतः हम आपको इस मिलका मैनेजर बनाना चाहते है। हमारे विचारसे आपके साथ किये गये अन्यायका यह एक प्रायश्चित्त भी है। यहाँ सब काम प्रायः हिन्दीमें ही होते है, किन्तु हमने सुना है कि आप काम चलाने लायक अंग्रेजी भी जानते है।' इसपर अपनी असमर्थता दिखाते हुए मिश्रजीने कहा कि 'यह बात तो ठीक है कि मै कुछ-कुछ अंग्रेजी अवश्य जानता हूँ; किन्तु इतने बड़े कामके मैनेजर बननेकी योग्यता तो मुझमें नही है।'

यह सुनकर मिल-मालिकने सेठजीसे कहा कि 'सेठजी ! मै जान गया हूँ इनमें सारी योग्यता है। आप इन्हें समझा दें। यदि मिश्रजी मेरे यहाँ यह काम नही करेगे तो मेरे मनमे असह्य दुख

होगा।' तदनन्तर सेठजीके बहुत कुछ समझाने-बुझानेपर मिश्र मैनेजरीका काम करनेके लिये राजी हो गये। फिर बोले कि 'खैर, आपसे मैं एक निवेदन करना चाहता हूँ। आपका आदे पालन करनेके बाद मैं आपसे यह पहली बार याचना कर रह हूँ, आशा है आप अवश्य स्वीकार करेंगे।' मिश्रजीकी बा सुनते ही मिल-मालिकने कहा—'बोलिये।' स्वीकृति मि जानेपर मिश्रजीने कहा कि—'प्रधान कर्मचारीको आप जे मत भेजिये ओर उनका काम भी मत छुड़ाइये। मैं उनक जिम्मेवारी लेता हूँ।' मिश्रजीकी बात सुनते ही सभी उपस्थि लोग धन्य-धन्य कहने लगे और गद्‌गद होकर मिल-मालिक कहा कि 'मिश्रजी! आप सचमुच देवता हैं। खानमें बहुमूल्य हीरेको खानका 'मालिक' नही, किन्तु जौहरी पहचानता है। उसी प्रकार मिलमें पड़े हुए आप-जेसे रत्न हमने आजतक नही पहचाना। संयोगवश इन श्रीमान् सेठज रत्नकी पहचान बताकर आज हमको कृतकृत्य कर दिया।'

पुनः उस पूजाकी समग्री लानेवालोंने मुझसे कहा 'देखिये पण्डितजी, सचाईका कैसा फल है कि हमारे मिश्र साधारण पिउनसे मिल-मैनेजर हो गये। मुहल्लेके लोग इन इतना विश्वास रखते है कि देखकर आपको आश्चर्य होग इन सब बातोंको सुनकर मैंने कहा कि 'भाई! ऐसे स आदमीकी सत्कार-सेवा करनेके लिये संसारके सभी लोगों तैयार रहना ही चाहिये। इसमें आश्चर्य क्या है।'

—पं० रामविलास मिश्र, कथाव



'ऋण चुका रहा हूँ'

वर्षोंसे हम उन्हें एक ही तरहका जीवन-यापन करते देख रहे है। प्रोफेसर होनेपर भी उनमें किसी प्रकारका आडम्बर नही दिखायी देता। उच्च कक्षाकी अनेक उपाधियोके साथ असाधारण विद्वान होनेपर भी उनके जीवनमें अद्भुत सादगी थी। धीमी चालसे चलते इन प्रौढ पुरुषको कोई नया आदमी देखे तो इन्हे बहुत थोड़ी आयवाला, बड़े कुटुम्का पोषण करनेवाला, रात-दिन अदालतमें लिखने-पढ़नेका काम करनेवाला क्लर्क ही समझे। इनके बाहरी रूपको देखनेवाला इनकी आन्तरिक शक्तिसे बिल्कुलअपरिचित ही रहता। इनके स्वभावकी विशेषताओको गहराईसे देखनेवाला सहज ही आकर्षित होकर इनका अपना बन जाता।

ये स्वेच्छासे ही अविवाहित थे। इनका सारा समय अपने प्रिय विषयके अभ्यासमें ही बीतता। इनके एकाकी जीवनका रहस्य पाना सम्भव नही था, इनके सम्पर्कमें आनेवाले सभी लोग इतना अवश्य देख सकते कि इनके जीवनमें मिथ्या भौतिक वैभवविलासका जरा भी स्पर्श नही था।

इनके निकटवर्तियोके मनमे यह प्रश्न तो उठा करता कि

इनकी आमदनी अच्छी होनेपर भी ये इस प्रकारका जीवन क्यों बिता रहे हैं; परन्तु इनके आन्तरिक जीवनकी झांकी करनेकी किसको फुरसत थी।

बार-बार पूछे जानेपर किसी धन्य घड़ीमें इनके मुखसे इनके भूतपूर्व जीवन-सम्बन्धी कुछ उद्‌गार निकल पड़ते। इन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवनकी दो-एक बाते बतायी थी। इन्होंने कहा था कि इनके विद्यार्थी-जीवनमें इनके कुटुम्बकी स्थिति बहुत ही तंग थी। यहाँतक कि इनकी पढ़ाईमें भी अड़चन पढ़नेकी परिस्थिति आ गयी थी। इन्हें जब मैट्रिककी परीक्षा में बैठना था, उस समय इनकी जेब बिल्कुल खाली थी। ऐसी विपत्तिके समय इनके बड़े भाईने इनको कहींसे पाँच रुपये उधार लाकर दिये थे और कठिन मजदूरी करके व्याज-समेत उस ऋणको चुकाया था। भाईके इस प्रेमको ये जीवनभर नही भूल सके। भाईकी सन्तानोंकी उन्नतिके लिये ही इन्होंने यह वेष धारण किया था। अपनी आमदनीका अधिकांश ये उनको देते रहे। अपनी अधिकांश आवश्यकताओंको घटाकर ये अपने कर्तव्य-पालनमें अटल रहे। इनके सम्पर्कमें आनेवाले एकाध पुरुषको ही इस बातका पता लगा था। इन्होंने कहा था—'भवस्निग्ध हृदयसे दी हुई इस मूल्यवान् सहायताका ऋण अभी पूरा चुकाया नही गया है—चुका रहा हूँ।' भ्रातृ-प्रेम-का यह उदाहरण सचमुच ही बड़ा प्रेरणादायक है।

—मनुभाई देसाई



विद्यालयकी मित्रता

हरदयालकी पत्नीका देहान्त हो गया। घरमें दो छोटे बच्चे। दो तीन सालतक पत्नीकी टी० बी० की बीमारीमें हरदयालके पास जो कुछ था, सब खर्च हो गया, कुछ ऋण भी हो गया। सेवा करनेवाला दूसरा कोई न होनेके कारण हरदयालको घर रहना पड़ता, इससे उसकी नौकरी भी छूट गयी। गरीबी ही उसकी स्त्रीकी टी० बी का भी प्रधान कारण

था। किसी तरह पिताने बी० ए० तक पढाया था माता पहले मर गयी थी। पाँच साल हुए, पिता भी चल बसे थे। पत्नीके चले जानेपर तो वह अब सर्वथा निराश-सा हो गया था। इधर चिन्ता-कष्टके मारे उसका अपनास्वास्थ्य भी बिगड़ रहा था। नौकरी कहीं लग नहीं रही थी। घरमें कुछ भी रहा नही। कैसे बच्चोंको पाले, क्या करे।

एक दिन वह घरसे निकलकर कही नौकरीकी तलाशमें जा रहा था। एक लोहेके व्यापारीके यहाँ कुछ आदमियोकी आवश्यकताका विज्ञापन निकला था, किसीने उसे बताया तो वह वहाँ पहुँचा। अन्दर जाकर वह वहाँके कलर्कसे मिला। दरखास्त लिखी और उस फर्मके मालिकके पास भेज दी। हरदयाल बाहर बैठा रहा। इसी बीच मालिकने उसे अपने पास भीतर बुलाया। वह गया, फर्मके मालिकका नाम था—राजाराम। हरदयाल उनके कमरेमें जाकर खड़ा हो गया। राजाराम उसकी ओर बड़े ध्यानसे देखने लगे। फिर सहसा उठकर हरदयालके गले लगकर मिलने लगे। हरदयाल तो हक्का-वक्का-सा रह गया। राजारामने हरदयालका हाथ पकड़कर कुर्सीपर अपने पास बेठा लिया और कहा—'भैया हरदयाल! तुम मुझे भूल गये क्या? हमलोग हाई स्कूलमें साथ पढते थे। तुम मुझसे बहुत प्यार करते थे। एक दिन मेरी पेंसिल खो गयी थी, मुझे जरूरी सवाल लिखने थे। मेरा उदास चेहरा देखकर तुमने अपनी पेंसिल मुझे दे दी थी। फिर तो तुम सदा ही मुझपर बड़ा प्रेम करते थे। हाई स्कूल छोड़नेके

बाद मै अपने पिताजीके पास कलकत्ते चला गया था। वहीं मैने बी० ए० किया। फिर यहाँ लौटनेपर मुझे भयानक चेचक निकली, उसीसे मेरा चेहरा बदल गया। इससे तुम मुझे नही पहचान सके! मैने कलकत्तेसे लौटकर यह नया व्यापार किया और भगवानकी दयासे आज तुम मुझे मिल गये। मुझे इतना आनन्द हो रहा हैं कि मै तुम्हे क्या बतलाऊँ।' यों कहकर हरदयालकी ओर बड़े स्नेहसे राजाराम देखने लगे। उनकी आँखोमें आँसू छलक आये।

फिर पूछनेपर हरदयालने अपनी सारी हालत बतायी। राजाराम उनकी दु:खद स्थितिकी बात सुनकर रोने लगे और बोले—'भाई हरदयाल! तुम यहाँ रहो और इस कामको सँभालो। मै तुम्हारा छोटा भाई हूँ। आजसे तुम्ही इस फर्मके मालिक हो। बहुत आग्रह करके राजारामने बच्चोंसहित हरदयालको अपने घर बुला लिया। फर्ममें उनका आधा हिस्सा कर दिया और ठीक अपने ही समान रहन-सहनसे उनको रखने लगे। हरदयाल ईमाननार तथा कार्यनिपुण थे। उनकी रेख-देखमें व्यापार और भी चमक उठा। राजारामने उनको ठीक बड़े भाईकी तरह बड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी स्कूलकी मित्रता तथा पेंसिलकी बात याद करके उनकी सेवा की। धन्य!

—गिरजादत्त शर्मा



ईमानदार और निर्लोभी

अभी कुछ ही दिनों पहलेकी बात है। मैं स्थानीय स्टेट बैंकमें एक सरकारी बिलके रुपयेका भुगतान लेने गया। कामकी जल्दीमें या अन्यमनस्कताके कारण मैं भूलसें कम रुपये लेकर चला आया। दूकानपर भी मैने रुपये नही गिने, वैसें ही रख दिये। परन्तु शामके समय मेरी दूकानपर बैंकका पोद्दार आया और बोला कि 'बैंकका हिसाब देते समय मेरे पास रुपये अधिक हुए और जाँच करनेपर पता लगा कि आपको रुपये कम दिये गये। अत. वे बाकी रुपये देने आया हूँ—ये रुपये लीजिये।' मैं उसकी बात सुनकर दंग रह गया, उसकी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठाको देखकर। इस बिगड़े जमानेमे, जब कि अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित पदाधिकारी दूसरेका धन हड़प करनेमें सकोच नहीं करते; न्यायसे हो या अन्यायसे—धन बटोरनेमें ही सब लग रहे हैं—एक मामूली हैसियतके कर्मचारीकी यह ईमानदारी वास्तवमें प्रशंसनीय है। विशेषकर ऐसी अवस्थामें जब कि वह इन रुपयोंको अपने आप रख सकता था। भगवान् करे, हमारे देशके सब भाई इसी तरह ईमानदार और निर्लोभी हों। भुगतानके रुपये ४५५६, १ पैं० थे।

—सागरचन्द अग्रवाल



मिलनेका पता
गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीहरिः

आनन्दके आँसू

पढ़ो, समझो और करो

[भाग ११]



गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

आनन्दके आँसू

पढ़ो, समझो और करो

(भाग ११)

आ० आँ० १-२ -

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय—गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०२६ से २०४३ तक ८०,०००
सं० २०४४ छठा संस्करण २०,०००
कुल १,००,०००
(एक लाख)

मूल्य एक रुपया पचास पैसे

मुद्रक— गीताप्रेस, (गोरखपुर)

प्रकाशकका निवेदन

यह 'पढ़ो, समझो और करो'का ११ वाँ भाग है। इसके पिछले भागोंकी काफी माँग है और ऐसे पत्र आ रहे हैं कि इसके पठन-अध्ययनसे चरित्र-सुधार तथा चरित्रके उच्चस्तरपर आरूढ़ होनेमें बड़ी सहायता मिल रही है। इसीसे 'आनन्दके आँसू'के नामसे ११ वाँ भाग प्रकाशित हो रहा है मनुष्य-जीवनमें सबसे मूल्यवान वस्तु है उसका सात्त्विक और उच्च चरित्र। आशा है कि इस पुस्तकके द्वारा भी सहृदय पाठक-पाठिकागण सात्त्विक तथा उच्च चरित्रके निर्माणमें प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

विनयावनत

प्रकाशक

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या



श्रीहरिः

आनन्दके आँसू

[पढ़ो, समझो और करो, भाग ११]

जार्ज वाशिंगटनका त्याग

पहले संयुक्त राष्ट्र अमेरिका इंगलैंडके अधीन था। इंगलैंडकी दासतासे मुक्ति पानेके लिये अमेरिकाको एक युद्ध लड़ना पड़ा था; जो इतिहासमें अमेरिकाके स्वातन्त्र्य-युद्धके नामसे प्रसिद्ध है। इस युद्धमें अमेरिका विजयी रहा। इस विजयका सारा श्रेय जार्ज वाशिंगटन (१७३२—१७९९) को था। वाशिंगटन एक लोकप्रिय नेता और सफल सेनानायक थे। अपने सैनिकोंमें वे बहुत ही लोकप्रिय थे। अमरीकी सैनिक उनके लिये प्राण देते थे। इस प्रेम और भक्तिका फल यह हुआ कि कुछ सैनिक अधिकारियोंने चुपके-चुपके इस बातकी तैयारी प्रारम्भ कर दी कि जार्ज वाशिंगटनको संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाका सम्राट् घोषित किया जाय और उससे एक नये राजवंशकी स्थापना हो। जब सेनाका अधिकांश भाग इसके लिये तैयार कर लिया गया, तब इस मामलेमें जो सबसे अधिक उत्साह दिखला रहे थे, उन कर्नल निकोलाने वाशिंगटनको इस शुभ अवसरके लिये तैयार हो जानेको लिखा। वाशिंगटनने पत्र प्राप्त करके निकोलाको पत्रका जो मुँहतोड़ उत्तर लिखा उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

न्यूवर्ग, मई २२ सन् ८२ (१७८२ ई०)

श्रीमान् !

•••मैं श्रीमान्‌को विश्वास दिलाता हूँ कि सारे युद्धके दौरानमें मुझे किसी भी घटनासे इतना कष्ट नहीं पहुँचा, जितना इस समाचारसे कि सेनामें इस प्रकारकी विचारधारा चल रही है जैसा कि आपने अपने पत्रमें प्रकट किया है। मैं ऐसे विचारोंसे घृणा करता हूँ और उनकी कठोर निन्दा करता हूँ।

मैं नहीं समझ पाता कि मेरे किस आचरणसे आपको मेरे सामने ऐसा प्रस्ताव रखनेका साहस हुआ••••••••••••••••यदि आपको अपने देशका, अपना या आनेवाली संततियोंका कुछ भी ध्यान है, यदि आपके हृदयमें मेरे प्रति कुछ भी सम्मानकी भावना है तो आप इस प्रकारके विचारोंको अपने मनसे निकाल दीजिये।

प्रणाम, मैं हूँ श्रीमान् ! आपका आज्ञाकारी

सेवक—

जार्ज वाशिंगटन

जार्ज वाशिंगटन अमेरिकाके प्रथम राष्ट्रपति थे। दुबारा भी वे ही राष्ट्रपति चुने गये। तीसरी वार भी जनता सर्वसम्मतिसे उन्हींको राष्ट्रपति बनाना चाहती थी, परंतु उन्होंने यह कहकर उस पदको अस्वीकार कर दिया कि बार-बार एक ही व्यक्तिके राष्ट्रपति बननेसे कहीं राजतन्त्र या अधिनायकवादकी नींव न पड़ जाय।'

—राजेन्द्रप्रसाद जैन



सद्व्यवहारसे स्वभाव-परिवर्तन

कुछ वर्षों पहलेकी बात है—बाँकेविहारी और बालमुकुन्द दो पड़ोसी थे। बाँकेविहारी बड़े उग्र स्वभावका और तामसी प्रकृतिका था तथा बालमुकुन्द सर्वथा सौम्य स्वभाव एवं सात्त्विकी वृत्तिका। दोनोंके खेत सटे-सटे थे। खेतकी जमीनको लेकर बाँकेविहारीने आपत्ति की—यद्यपि बालमुकुन्दका कोई दोष नहीं था, न उसकी नीयत ही खराब थी, पर बाँकेविहारीने पटवारीसे मिलकर एक बीघा खेतकी जमीनकी झूठी माँग की और बालमुकुन्दपर उसे चोरीसे दबा लेनेका मिथ्या आरोप लगाया। बालमुकुन्दने अपनी सात्त्विक स्वभावा पत्नीसे सलाह करके सब कुछ सह लिया और बाँकेविहारीकी माँग मिथ्या तथा अन्याययुक्त होनेपर भी चुपचाप जमीन उसे दे दी। इतना ही नहीं, अपनी भूल स्वीकार करके उसे उसके इच्छानुसार एक क्षमायाचना-पत्र भी लिख दिया। इससे बाँकेविहारीका दिमाग ठीक होना तो दूर रहा, वह और भी बिगड़ गया। 'लाभसे लोभ बढ़ता है।'—इस नीतिके अनुसार बाँकेविहारीने बालमुकुन्दको और भी दबाने और उसका हक मारनेका विचार किया। दोनोंके घरके बीचकी हिस्सेदारीकी एक ही दीवाल थी। बाँकेविहारीने उस दीवालपर एकमात्र अपना ही अधिकार बताया और उसे तोड़नेका निश्चय किया। कहा, इस दीवालकी जगह दूसरी कमरेकी दीवाल उठाकर नया कमरा बनाना है। बालमुकुन्दने बड़े नम्र शब्दोंमें इसका

विरोध किया । उसे सुनते ही वह आगबबूला हो गया और बालमुकुन्दको मारने दौड़ा । बालमुकुन्दको बचानेके लिये उसका सोलह वर्षका लड़का दीनानाथ बीचमें आ गया तो बाँकेविहारीने उसीके सिरपर लाठी जमा दी । उसका सिर फट गया । बालमुकुन्द और उसकी स्त्रीको बड़ा दुःख हुआ, पर वे कुछ बोले नहीं । लड़केको अस्पताल ले गये ।

इधर दीनानाथकी इस दशाको देखकर बाँकेविहारीका गुस्सेका पारा उतरा । उसने सोचा अब तो फौजदारी मुकदमेमें फँसना पड़ेगा । बालमुकुन्द सीधा आदमी है, उसे मना लिया जाय तो इस विपत्तिसे छुटकारा हो सकता है । वह तुरंत भागा हुआ अस्पताल पहुँचा और पश्चात्तापके आँसू बहाता हुआ बालमुकुन्दको एक तरफ एकान्तमें ले जाकर बोला—'भाई ! मैं बड़ा नीच हूँ, मुझसे बड़ी भारी गलती हो गयी, मेरे द्वारा क्रोधके आवेशमें यह कुकर्म बन गया । अब तुम ही मेरी जान बचा सकते हो । तुम कह दो कि पैर फिसलकर दीनानाथ गिर गया था, इससे सिरमें चोट लग गयी ।' तुम ऐसा कर दोगे तो मै बच जाऊँगा । मुझे अब अपनी सारी भूलें नजर आ रही हैं । मैंने तुम्हारा सदा ही बुरा किया और तुमने सदा मेरा उपकार किया । अब मैं तुम्हारा कभी गुण नहीं भूलूँगा । तुम्हारी एक बीघा जमीन मैं वापस लौटा दूँगा । दीवालका दावा भी मेरा झूठा ही था । मैं अब वैसी कोई बात नहीं करूँगा । तुम मुझे बचाओ ।'

बालमुकुन्दकी स्त्री पास ही खड़ी थी। उसने सारी बातें सुनकर पतिसे कहा—'यह बेचारे इतना पश्चात्ताप तथा दुःख प्रकट कर रहे हैं, तो इनकी बात मान लीजिये, बच्चा भगवान्की दयासे अच्छा हो जायगा। इनको क्लेश हो, इससे हमें क्या मिलेगा।' बालमुकुन्दका तो यह विचार था ही। उन्होंने यही डाक्टरसे कहा। पुलिसमें बयान देनेका तो कोई प्रसंग ही नहीं था, क्योंकि अब तो प्रसंग यह घरकी एक साधारण दुर्घटनामात्र रह गया था। दीनानाथके गहरी चोट नहीं थी, वह महीनेभरमें अच्छा हो गया। इस घटनाने और बालमुकुन्दके सद्व्यवहारने बाँकेविहारीके जीवनमें विचित्र परिवर्तन ला दिया। उसका स्वभाव ही बदल गया। दोनों पड़ोसी बड़े प्रेमसे रहने लगे।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

—अवधराम मिश्र



परदुःखकातरता

ग्रीष्म ऋतु थी। दोपहरका समय था। भगवान् भास्कर अपनी प्रखर किरणोंके द्वारा धरतीको तपा रहे थे। कलकत्ता नगरीके बीच सड़कपर एक बुढ़िया सिरपर एक बड़ा बोझा उठाये चली जा रही थी।

वृद्धावस्था, दोपहरकी झुलसा देनेवाली गरमी एवं क्षीणकाय दुर्बल शरीर; इन सबने वृद्धाको थका दिया था। पसीनेसे लथपथ हाँफती हुई वह आगे बढ़ रही थी।

अन्तमें गरमीके मारे वह वृद्धा आगे बढ़नेमें असमर्थ हो गयी और प्रखर धूपमें ही राजमार्गके एक किनारे निःसहाय होकर बैठ गयी। अनेकों लोग आये-गये। किसीने वृद्धाकी ओर ध्यान नहीं दिया।

कुछ समय उपरान्त उधरसे बाबू यतीन्द्रनाथ निकले। यतीन्द्रनाथ परपीड़ासे हार्दिक क्लेश अनुभव करनेवाले भारतीय युवक थे।

उन्होंने देखा कि एक बुढ़ियाके आगे एक बोझा पड़ा है, पर उसे उठानेका उसमें शक्ति नहीं रह गयी है।

यतीन्द्रनाथ तुरत वृद्धाके पास गये और बोले—'माँ! तुम आगे-आगे चलो—मैं यह बोझा तुम्हारे घरतक पहुँचा आता हूँ।'

वृद्धा युवककी दयाभावनाको देखकर गद्गद हो उठी और अन्तःकरणसे उन्हें आशीर्वाद देने लगी। यतीन्द्रनाथने वह बोझा उठाकर वृद्धाके घर पहुँचा दिया।

यही नहीं—उन्होंने जब वृद्धाकी दीन-दशा देखी तो द्रवित हो गये और वे उसे पाँच रुपया प्रतिमास देते रहे।

आजके इस संकुचित स्वार्थप्रधान युगमें, जबकि मनुष्य परमार्थ-भावनासे तेजीके साथ दूर होते जा रहे हैं, यह सच्ची घटना सच्ची मानवताका चिर-नवीन सन्देश सुनाती है। वास्तवमें असहायोंकी सेवा करना ही सच्चा धर्म है।

—प्रो० श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०



ईमानदारीकी प्रतिष्ठा

कुस्तोर कोलियरी बहुत बड़ी थी। वह लगभग ७०० मजदूरोंकी जीविका चलाती थी। उसके मालिकने मजदूरोंकी जरूरतोंके सब सामान बेचनेका ठेका अपने साले भगवती बाबूको दे रक्खा था। भगवती बाबूने यह व्यवस्था की थी कि मजदूरोंको आवश्यक चीजें उधार दी जायँ और महीना पूरा होनेपर वे पैसे उनके वेतनमेंसे सीधे काट लिये जायँ। इससे मजदूरोंको रोज-रोज पैसे नहीं देने पड़ते थे, वे झंझटसे बचते थे और अधिकांश अपनी जरूरतकी सभी चीजें सस्ती-महँगी इसी दूकानसे खरीद लेते थे। भगवती बाबू भी बड़े ही ईमानदार थे। उन्हें नफेके रुपयोंकी अपेक्षा अपनी प्रतिष्ठा कहीं अधिक प्यारी थी, इससे बहुत वर्षोंतक दूकान चलानेपर भी उन्होंने अपनी ईमानदारीपर जरा भी आँच नहीं लगने दी। अब उम्र बड़ी हो जानेपर उन्होंने दूकानके कामसे अपनेको हटाकर पूजा-पाठमें मन लगाया। दूकानका काम उनके पुत्रके हाथोंमें आ गया। उनका पुत्र निरंजन अपने पिताकी ईमानदारीकी बातको हँसीमें उड़ाकर काम-धन्धेमें तरह-तरहकी अनुचित रीतियोंको आजमाने लगा।

भगवती बाबू यद्यपि काम-काजसे निवृत्त होकर पूजा-पाठमें ही लगे रहते थे, परन्तु दूकानकी साखकी ओर उनका ध्यान लगा रहता था और ईमानदारीसे प्राप्त की हुई प्रतिष्ठा—अपने जीवनकी अमूल्य कमाई—पुत्रकी लोभी वृत्तिसे नष्ट न हो जाय, इसकी उन्हें सदा चिन्ता लगी रहती थी।

एक बार उन्होंने गुप्तरूपसे एक मजदूरको बुलाया और दूकानसे एक सेर चीनी मँगवायी । जब मजदूर चीनी लेकर आया, तब भगवती बाबूने कोलियरीकी गोदामके तराजूसे उसे वजन करवाया । वह ठीक आध पाव कम थी । वे कुछ बोले नहीं और दूकानपर जाकर बैठ गये और जिस दिनसे पुत्रको काम सँभलवाया था, उस दिनसे आजतक कौन-कौन चीनी ले गया था, इसकी एक फेहरिस्त बना ली । फिर, प्रत्येक ग्राहककी एक सेर चीनीके पीछे आध पाव चीनीके दाम लौटा दिये ।

परंतु पुत्रके इस अनुचित कामोंसे उनके मनपर बड़ी भारी चोट पहुँची थी । उसका घाव इतना गहरा था कि उन्हें प्रतिष्ठा खोकर दूकान रखनेकी ही इच्छा नहीं रही । इसलिये उन्होंने कोलियरीके मालिक अपने बहनोईको बुलाकर दूकान उन्हे वापस दे दी और पुत्रको कोलियरीके कार्यालयमें कडी मेहनतकी नौकरीमें लगा दिया । उनकी पत्नी तथा पुत्रने माफी माँगकर फिर ऐसा न करनेका वचन भी दिया और कुटुम्बकी भलाईके लिये बहुत अच्छी आमदनीवाली इस दूकानको न छोड़नेके लिये वे बहुत गिड़गिड़ाये भी, किन्तु कुटुम्बके लिये अच्छी कमाईकी अपेक्षा उन्हें कुटुम्बकी प्रतिष्ठा विशेष महत्त्वकी वस्तु लगी और अपने निश्चयपर दृढ़ रहकर उन्होंने दूकान कोलियरीको सुपुर्द कर दी । पुत्र नौकरी करने लगा और भगवती बाबू अपनी साधारण बचतके ब्याजसे अत्यन्त सादगीके साथ अपना निर्वाह करते हुए भगवत्स्मरणमें मग्न हो गये ।

—शान्तिलाल वोले



मन्त्रका प्रभाव

घटना कुछ वर्ष पहलेकी है। एक बार हमारे यहाँ हैजाका प्रकोप बड़े जोरोंसे हुआ। रोज तीन-चार शव गाँवसे निकलते थे। महामारीका प्रकोप इतना बढ़ चला था कि बहुत बड़ा गाँव बिल्कुल जनशून्य-सा प्रतीत होता था। गाँवके पुरोहित लोग गाँव छोड़कर भाग चले थे। अधिकांश व्यक्ति तो कालके गालमें चले ही गये थे, शेष मारे भयके जिन्दा ही मुर्दा बन गये थे। गाँवसे कुछ दूर एकान्तमें पीपल वृक्षके नीचे भगवतीका एक स्थान था। हमारे परिवारमें केवल पिताजी ही स्वस्थ थे। वे प्रतिदिन शामको दीप जलाने एवं आरती उतारनेके लिये भगवतीके स्थानपर जाया करते थे। दीप जलाते एवं आरती उतारते समय मन्दिरमें एक प्रकारका भयानक शब्द होता था। वापस आते समय फिर मन्दिरकी ओर पीछे देखना बड़े ही साहसका काम होता था।

महामारीके प्रकोपके समय एक दिन सवेरे एक जटाधारी, लपेटे नंगे साधुने गाँवमें प्रवेश किया। सबसे पहले मेरा

ही घर पड़ा। वे आकर मेरे द्वारपर बैठ गये। उन्होंने सर्वप्रथम यही प्रश्न किया—'चचा! गाँव बहुत उदास-सा लग रहा है। तुम भी उदास लगते हो, क्या बात है?'

पिताजीने सारी बातें बतलायीं। उन्होंने गाँवमें जाकर आश्वासन दिया तथा नीचे लिखे मन्त्रोंका सबेरे सात सौ, दोपहरको सात सौ तथा शामको भी सात सौ बार घीके हवनसहित जप किया। इसका परिणाम दो ही दिनमें जादूकी तरह हुआ। गाँवके सभी लोग स्वस्थ हो गये। तबसे हमारे गाँवमें अबतक महामारी नहीं आयी।

महात्माजीने बतलाया कि इस मन्त्रको अपने घरके प्रत्येक द्वारपर कागजपर लिखकर साट देनेसे महामारीका प्रकोप नहीं होता है। इस मन्त्रको गुप्त रखना चाहिये। नास्तिकोंको बतलानेसे महत्त्व कम हो जाता है। हमलोगोको अनेकानेक उदाहरणोंसे इस मन्त्रपर पूर्ण विश्वास है।

मन्त्र—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥

—श्रीचन्द्रेश्वर 'निर्मल' चोरमा



एकान्तरा ज्वरकी रामबाण दवा

एकान्तरा ज्वरके लिये 'अपामार्ग' रामबाण दवा है। मेरा लगभग तीस वर्षका अनुभव है। सैकड़ों रोगियोंपर इसका उपयोग करके मैं लाभ उठा चुका हूँ। प्रयोगकी विधि निम्नलिखित है—

जिस रविवारको पुष्य नक्षत्र हो, उससे एक दिन पहले 'अपामार्ग' वनस्पतिके पेड़के पास जाकर जलसे उसे स्नान करावे, फिर उसपर रोळो (कुंकुम) चढ़ावे, तदनन्तर तिल-चावल चढ़ाकर उसकी जड़में नालका रक्षासूत्र बाँध दे और फिर यह कहकर उसे निमन्त्रण दे आवे कि मैं अपने कार्यकी सिद्धिके लिये कल प्रातःकाल आपको लेने आऊँगा। फिर दूसरे दिन पुष्य नक्षत्रयुक्त रविवारको प्रातःकाल सूर्योदयके

समय उसकी मूल (जड़को) बँधे हुए रक्षासूत्रसमेत उखाड़ ले आवे। इतना ध्यान रहे कि जड़ उखाड़कर लेते समय कोई टोका-टाँकी न करे कि तुम क्या कर रहे हो ?

इस प्रकार लायी हुई अपामार्गकी जड़ घरमें रक्खी रहे। यह वर्षोंतक काममें ली जा सकती है। एकान्तरा ज्वरके रोगीको जिस दिन ज्वर आनेकी पारी हो, उस दिन ज्वर आनेके एक-दो घण्टे पहले अपामार्गकी थोड़ी-सी जड़ उसी रक्षासूत्रमें बाँध सात गाँठ दे दे। फिर गूगलका या गौ-घृतका धूप देकर दक्षिण भुजा या कण्ठमें बाँध दे। उसी दिनसे ज्वर आना बन्द हो जायगा। कदाचित् उस दिन ज्वर आया तो सम्भव है बहुत जोरसे आवे। घबराना नहीं चाहिये। दूसरी पारी बिल्कुल नहीं आयेगा।

इस जड़ीका उपयोग केवल सेवाके लिये ही करे। पैसा कमानेके लिये कदापि न करे।

—देवीप्रसाद उर्फ छोटेलाल दूबे, रायपुरदरवाजा बाहर,
कॉकरिया रोड, अहमदाबाद



ईश्वरप्रार्थनाका फल

जिनकी घटना है—वे नवयुवक इरविन अस्पताल दिल्लीमें एक्सरेकी ट्रेनिंग ले रहे हैं—उनका नाम श्रीहरिस्वरूप वर्मा है। भगवान्‌की प्रार्थनासे उनके प्राण कैसे बचे, यह उन्हींके शब्दोंमें पढ़िये।

वे लिखते हैं—

'अभी ६ ता० की (रातको) नौ बजे जानेवाली मेलगाड़ीसे मैं दिल्लीसे बरेली चौदहवींका फार्म भरने जा रहा था। भीड़ होनेकी वजहसे दरवाजेके पास खड़ा हो गया। वहाँ एक और आदमी खड़ा था और उसका एक साथी लेटा हुआ था वहीं। मैंने उसके पूछनेपर बता दिया कि मुझे बरेली जाना है। मुरादाबाद स्टेशनके बाद दरवाजेपर खड़े हुए आदमीने एक जहरीला सिगरेटका धूआँ फेंका। मेरे सिरमें दर्द होने लगा। फिर मुझे पता नहीं क्या हुआ, आगे रामपुर स्टेशनपर उन्होंने मुझे उतार लिया। मुझे बेहोशीकी हालतमें रिक्शेमें बैठाकर वे शहरसे तीन मील दूर ले गये। रिक्शेवालेको पैसा देकर वापस भेज दिया। उस समय मुझे कुछ होश आ गया था। मैंने उनसे पूछा—'तुम कौन हो? मुझे किसलिये यहाँ लाये हो?' उन्होंने कहा—'तुम्हारी तबियत खराब है। हम अपने घर ले जा रहे हैं।' मैंने मना किया। वे जबरदस्ती मुझे सड़कसे मिले हुए खेतमें ले आये। एकने मेरा गला पकड़ लिया और चाकू गलेपर रखकर कहा—'निकालो क्या है तुम्हारे पास।' मैंने पर्स निकालकर दिया। उसमें केवल बीस रुपये थे। उन्होंने पैण्टकी जेबें देखीं; उनमें कुछ और रुपये थे। एक नयी १५०) की घड़ी थी। सब लेकर कमीज-पैण्ट उतरवाकर वे चलने लगे। फिर एकने कहा—इसने रिक्शेवालेको पहचान लिया है—कोई गड़बड़ न हो जाय,

इसलिये खत्म कर दो।' मैंने उनसे कहा—'तुमको सामान लेना है, ले लो।' लेकिन वे नहीं माने। मैंने भागने आदिकी कोशिश की लेकिन सब व्यर्थ! उन्होंने मेरा एक टाँगसे हाथ बाँध दिया और मारनेकी तैयारी कर दी। उनमेंसे एक गर्दनमें चाकू मारनेहीवाला था। मैंने अपना अन्तिम समय समझकर उनसे प्रार्थना की कि 'मुझे एक मिनट अपने भगवान्‌का नाम तो ले लेने दो।' आर्तस्वरसे प्रार्थना की अपने सरकारसे। इतनेमें ही एक मोटर-ट्रकके आनेकी आवाज सुनायी दी। सड़कपर ट्रक जा रही थी। मैंने 'रोकना जरा' ऐसी आवाज मारी। ट्रक मेरे प्रभुकी प्रेरणासे वहीं रुक गयी। वह आदमी जो चाकूवाला था, एकदम भाग गया और दूसरा सामानपर झपटा और हाथमें कुछ सामान लेकर भागा। घड़ी और पर्स गिर गये उसके हाथसे। बाकी रुपया तथा खेरीज लेकर वह भाग गया। मैं ट्रकमें बैठकर स्टेशन आ गया।

इस काण्डके होनेमें लगभग आध-पौन घंटा लगा। तबतक कोई ट्रक वगैरह नहीं आयी। वह तो प्रभुसे जब प्रार्थना की तभी आयी। दूसरे, ट्रक इतनी तेजीसे चलती है कि वह कोई आवाज सहजमें सुन ही नहीं सकती। यह तो सब प्रभुकी ही लीला है। प्रभु ही अपने जनोंकी सदा-सर्वदा रक्षा करते रहते हैं। प्रभुने प्राण-दान दिया तथा सब सामान अटैचीसहित, जिसमें उस नवयुवकके कागजात वगैरह बड़े कामकी चीजें थीं सब बच गयीं। थोड़े-से रुपये खेरीज ही वे ले गये।

—बृजनाथशरण अरोड़ा

भगवन्नामका अमोघ परिणाम

करीब दो साल पहलेकी बात है। मेरे मकानके सामने एक पंजाबी सज्जन रहते थे। रातको दो बजे मुझे बुलाने आये, बोले—'मेरा दौहित्र बीमार है और उसकी हालत बहुत खराब है!' मैं तुरंत गया। लड़का छः-सात सालका था। स्थिति शोचनीय थी। मैं भी हताश हो गया। क्या किया जाय, कुछ समझमें नहीं आया। इतनेमें ही धन्वन्तरि भगवान्‌के ये वचन याद आ गये—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

मैंने घरके सब लोगोंको हटा दिया और लड़केका हाथ अपने हाथमें लेकर 'अच्युत, अनन्त, गोविन्द'—इन भगवन्नाम-

मन्त्रोंका मन-ही-मन जप करने लगा। एक घण्टेभर जप चला था कि लड़का उठ बैठा और हँसने लगा। सब लोग आ गये। मैंने कहा—'भगवान्‌की कृपासे लड़का अच्छा हो गया।' वह लड़का अब भी जीवित है और सकुशल है।

इस मन्त्र—'अच्युत, अनन्त, गोविन्द'को सिद्ध कर लेना चाहिये। सिद्ध करनेकी विधि यह है—आश्विन मासमें धन-त्रयोदशीके दिन स्नानादिसे पवित्र होकर आसनपर बैठ जाय और शुद्ध घीका दीपक जलाकर उपर्युक्त मन्त्रका १,२८,००० (एक लाख अट्ठाईस हजार) जप पूरा कर ले। एक दिनमें न हो तो दूसरे दिन दूध पीकर कर ले। जप पूरा होनेपर इसी मन्त्रसे कुछ होम करे और यथाशक्ति एक या अधिक पवित्र ब्राह्मण या सन्तोंको भोजन करा दे। बस, मन्त्र सिद्ध हो गया। इस मन्त्रका प्रयोग कभी पैसेके लिये न करे।

—एक वृन्दावनवासी बाबा



ग्रामीण चमारिनकी ईमानदारी

लगभग दो महीने पूर्व चखनी (बगहाके पास) के पादरी साहब बेतिया बैंकसे २८,००० रुपयेका भुगतान लेकर मोटर-साइकिलसे लौरिया पिरोडसे जा रहे थे। भूलसे उनका मनीबैग शनीचरी चौकसे कुछ दक्षिण ही गिर पड़ा, जो तत्काल उन्हें मालूम भी न हो सका। बहुअरवा ग्रामकी एक बुढ़िया चमारिनने उसे पाया और वह अपने घर ले गयी। वहाँ उसने खोलकर देखा तो उसमें नोट-ही-नोट भरे थे। बुढ़ियाने पादरी साहबको जाते देखा था, अतः वह समझ गयी कि यह उन्हींका है। वह तुरन्त ही फिर सड़ककी ओर इस अभिप्रायसे लौट आयी कि वे लौटें तो उनसे यह बात कह दूँ।

किंतु कुछ दूर आगे जानेपर जब पादरी साहबको बैग गिर जानेका ध्यान आया, तब वे शीघ्र ही वापस लौटे तथा बुढ़ियाके फिर सड़कपर आनेसे पहले ही वे बेतियाकी ओर चले गये। वहाँ (बेतिया) थानेमें इसकी इत्तिला दी और लौरिया थानेमें भी फोन करवाया। यह सब करके वे फिर वापस लौटे, तबतक बुढ़िया उनकी प्रतीक्षामें सड़कपर बैठी

रहीं। उन्हें आते देख उसने रोका और सब हाल कह सुनाया। पादरी साहब उसके साथ उसके घरतक गये। बुढ़ियाने उनका बैग उन्हे सौंप दिया। उन्होंने देखा तो सब रुपये ठीक थे। पादरी साहब तीन हजार रुपये उसे देना चाहते हैं, जिसकी जमीन ठीक होनेपर उस बुढ़ियाके नातीके नामसे खरीदी जायगी; क्योंकि उसका कोई दूसरा वारिस नहीं है। सुना है—उसके घर (झोपड़ी) की मरम्मत उनके द्वारा करायी गयी है।

इस घोर कलिकालमें भी कुछ ऐसी शुचिता-सम्पन्न (ईमानदार) आत्माएँ विद्यमान हैं, जो कठोर प्रलोभनकी स्थितिमें भी अपने मानवीय कर्तव्योंको कदापि नहीं भुला पातीं; यद्यपि आधुनिक शिक्षित सभ्य-नामधारी समाजमें उन्हें अशिक्षित तथा असभ्य ही समझा जाता है। भगवान् करें कि वह कुशिक्षा ही यहाँसे सर्वथा दूर हो, जो आत्मा-जैसी अमूल्य निधिको लुटाकर नश्वर क्षणिक सुख-विलासोंकी ओर अग्रसर होनेकी प्रेरणा देती है। किसी कविने ठीक ही लिखा है—

जन्मैव वन्ध्यतां नीतं भवभोगोपलिप्सया।
काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया॥

—नन्दकिशोर झा



सेठकी सुहृदता

कुछ वर्षों पहलेकी बात है। राजस्थानके एक कस्बेमें एक सेठके पास एक अपरिचित सज्जन बहुत आवश्यक होनेपर बहुत अधिक कीमतकी हँसली रखकर सात सौ रुपये उधार लेने आये। सेठने उनके प्रति सहानुभूति करके कहा—'सात सौ रुपये ले जाइये, हँसलीकी कोई आवश्यकता नहीं है।' पर वे नहीं माने। तब हँसली रखकर उन्हें सात सौ रुपये दे दिये गये। सेठने हँसली अपनी पुत्रवधूके पास रखवा दी। हँसलीके साथ ही उन सज्जनका नाम-पता लिखा था।

इसके बाद काफी समय बीत गया। वे सज्जन रुपये देकर हँसली छुड़ाने नहीं आये। इधर सेठ बीमार रहने लगे। उनके एक अङ्गपर लकवा मार गया। अब सेठ बड़ी चिन्तामें पड़े और सोचने लगे कि उक्त सज्जनके पास सात सौ रुपयेकी व्यवस्था नहीं हो सकी होगी, इससे वे हँसली लेने नहीं आये। हँसली ज्यादा कीमतकी है। वे बेचारे हँसलीसे वञ्चित हो जायेंगे तो उनका बड़ा नुकसान होगा। सेठको

उन सज्जनका नाम-पता तो याद रहा नहीं, पर वे बार-बार उनकी याद करके बड़ा दुःख प्रकट करते। एक दिन पुत्रवधू-ने उनकी बात सुनकर कहा कि 'उनका नाम-पता तो हँसली-के साथ ही मेरे पास लिखा है।' यह जानकर सेठको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे लकवाकी बीमारीकी हालतमें ही मोटरपर सवार होकर हँसली लेकर उक्त सज्जनके गाँव पहुँचे। उन्होने वहाँ जाकर उनसे कहा—'आप अपनी हँसली ले लीजिये, रुपयेकी व्यवस्था नहीं हो सकी तो कोई संकोचकी बात नहीं है।' वे बेचारे तो यह देख-सुनकर आश्चर्य-चकित हो गये। उन्होंने हँसली लेनेसे इन्कार किया। पर सेठ माने नहीं, उन्हें हँसली देकर ही आये और इससे उन्हें बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। वे सज्जन तो गद्‌गद हो गये।

—एक जानकार



कुछ अनुभूत अमोघ दवाएँ

१. आधाशीशी—रात्रिको सोनेसे पूर्व एक छटाँक चीनी या चीनीका बूरा पावभर पानीमें घोलकर ढककर रख दें। ऐसा ढके जिसमें चींटी आदि न लग जायँ। प्रातःकाल सूर्य-उदयसे एक घंटा पहले जलको अच्छी तरह हिलाकर पी जाय। बस आधाशीशी गयी। यह अनुभूत है!

२. तिजारी (एकान्तरा) ज्वर—आनेके दिन दो घंटे पहले, रोगीको थोड़ा-सा गुड़ लेकर अपने पास बुला लें; फिर थोड़ी-सी भुनी हुई फिटकरी गुड़में मिलाकर भगवान्‌के नामका उच्चारण करते हुए उसकी गोली बनाकर रोगीको खिला दे। ऊपर से थोड़ा-सा जल पिला दे। इससे एकान्तरा नष्ट हो जाता है।

३. उदर-रोग—प्रतिदिन प्रातःकाल गाय (काली गौ हो तो सर्वोत्तम) का पहली दफेका मूत्र मिट्टी, काँच या चीनी माटीके बरतनमें लेकर उसमेंसे छानकर केवल एक छटाँक गोमूत्र पी ले। चालीस दिनोंतक नियमित पीना चाहिये। इससे पेटके सारे रोग दूर होते हैं।

४. (क) उदर-शूल—कच्ची फिटकरी दो माशा एक तोला शुद्ध शहदमें बारीक पीसकर उसे चटा दे। १५ मिनटमें आराम हो जाता है।

(ख) नाभिके नीचेका शूल (वृक्‌शूल)—एक मुनक्का लेकर उसमेंसे बीज निकाल दे और बीजकी जगह एलुवा रखकर उसे रोगीको निगलवा दे। ऊपरसे थोड़ा-सा जल पिला दे। पाँच ही मिनटमें आराम होता है।

—श्रीराधेश्याम मौनीबाबा वंशीवाला, वंशीवट, वृन्दावन

नायलोनका बुरा फल

हमारे एक सम्बन्धीकी बहिन अंकलेश्वरमें जल गयी थी। तार मिलते ही मैं वहाँ गयी। नायलोनकी साड़ी पहिने रसोई बना रही थी, स्टोव जमीनपर था। किसी चीजको लेने गयी थी कि साड़ीके एक छोरको आगने पकड़ लिया। फिर तो नायलोन जलकर सारे शरीरमें चिपट गया। जलनेके बाद पुकार मचाती बहिन बाहर दौड़ आयी, तबतक तो नायलोनकी साड़ी शरीरसे ऐसी चिपक गयी कि अस्पतालमें जब उसका पोस्टमार्टम किया गया तो चिमटीसे खींच-खींचकर नायलोनके टुकड़े शरीरसे निकाले गये। यह दृश्य इतना करुण था कि मेरी तो आँखें तिरमिरा गयीं। नायलोन जितना सुन्दर तथा सुविधा-भरा है, उतना ही हानिकारक और प्राणहारी है।

दूसरा प्रसंग यह है कि मेरे गलेमें दर्द होनेके कारण मैं एक दिन बम्बई अस्पतालमें गयी थी। वहाँ एक बहिनको

देखा, जिसकी छाती और हाथ बुरी तरह जले हुए थे। गरदनके ऊपरकी चमड़ी और गाल भी जले थे। गरदनकी नसें जलकर छोटी हो गयी थीं। पूरा मुँह नहीं खुल पाता था। पूछनेपर पता लगा कि वह बहिन नायलोनकी चोली पहिनकर बाहर जा रही थी। इतनेमें दूधवाला आ गया। दूध गरम करनेको रक्खा। उतारते समय सँड़सीके बदले बहिन साड़ीसे ही तपेली उतारने लगी। इसीमें एक छोर जल उठा और बहुत प्रयत्न करनेपर भी नायलोनकी चोली शरीरसे उतरी नहीं। शरीरसे नायलोन चिपका था, इसीसे वह इतनी जल गयी थी। सुन्दर नायलोनके पीछे कितनी विपत्ति भरी है। एक बहिन नायलोनके मोजे सदा पहने रहती, इससे उसको चर्मरोग हो गया।

—देवल स्नैया



व्यापारमें उदारता

कुछ वर्षों पहलेकी बात है । जयपुर महाराजके महलको सजानेके लिये बम्बईकी दो प्रसिद्ध फर्मोंको फर्नीचर लगानेका आर्डर दिया गया । दोनों ही फर्में फर्नीचर बनानेमें निपुण तथा एक-दूसरेसे बढ़ी-चढ़ी थीं । संयोगवश फर्नीचरको पालिस करने तथा फिटिंग करनेके लिये दोनों ही फर्मोंके कारीगर एक ही साथ जयपुर पहुँच गये और अपने-अपने जिम्मेके अलग-अलग कमरोंके सजानेका काम जोरोंसे चलाने लगे । प्रतिद्वन्द्वीकी तरह दोनो फर्मोंके कारीगर एक-दूसरेके कामकी शिकायत महलके मास्टरसे करते और मास्टरके द्वारा बात महाराजतक पहुँच जाती ।

एक दिन सबेरे स्वयं महाराजा फर्नीचर देखने आये । उस समय एक फर्मके मालिक भी आये हुए थे । उन्होने अपने मालकी बड़ी प्रशंसा करते हुए दूसरी फर्मके लिये कहा कि 'उसने लकड़ी बहुत हल्के दर्जेकी बरती है ।' यों महाराजके कानमें जहर भर दिया । महाराजने उस फर्मको पत्र लिखा कि वह अपना फर्नीचर वापस ले जाय और एडवांसमें दिये हुए रुपये लौटा दे । पत्र पढ़कर उक्त फर्मके मालिक बहुत दुखी हुए । उसी रात्रिको वे जयपुरके लिये चल निकले । व्यापारमें जीवनभर कभी धोखा न करनेपर भी यह लाञ्छन लग गया; इसके लिये वे ईश्वरसे माफी माँगने लगे ।

स्टेशनसे वे सीधे ही महलमें पहुँचकर महाराजासे मिले । वहाँ प्रतिद्वन्द्वी फर्मके मालिकको उपस्थित देखकर उन्होंने परिस्थितिका सारा रहस्य समझ लिया । उनकी उपस्थितिमें ही उन्होंने महाराजाको एडवांसका चेक वापस देते हुए कहा—

'सरकार! आपने आर्डर रद्द कर दिया, इसका हमें कोई खास विचार नहीं है, परंतु यह तो हमारी इज्जतका सवाल है। प्रत्येक फर्नीचरमें हमने शर्तके मुताबिक सागवानकी लकड़ीको ही काममें लिया है। इसकी तसल्लीके लिये मै मशीन साथ लाया हूँ, आप अपने शहरके किसी अच्छे जानकारको बुलाकर जाँच करा लें। वे जाँच करके आपको निश्चित बात बता सकेंगे।'

इसी बीच प्रतिद्वन्द्वी फर्मके मालिक धीरेसे खिसक गये। महाराजाने शहरके पारखीको बुलाकर जाँच करवायी, तब निश्चय हो गया कि लकड़ी ठीक सागवानकी लगी है और काम भी बहुत अच्छा किया गया है।

महाराजाने आर्डर रद्द करनेका आदेश वापस ले लिया और उस फर्मके मालिकका आभार मानते हुए काम चालू रखनेको कहा। इसीके साथ महाराजाने दूसरी फर्मका फर्नीचर कैसा है; यह जाननेके लिये उनसे पूछा। उन्होने कहा—'सरकार! हम अपना माल कैसा है, केवल यही बता सकते हैं। दूसरेकी चीजके विषयमें सम्मति देकर उसे नीचा या हल्का बतलाना हमारे सिद्धान्तमें नहीं है।' दोनोका काम पूरा हुआ और रकम चुका दी गयी। इनमें इस फर्मका काम सहज ही सबको बहुत सुन्दर लगता था।

बहुत दिनो बाद महाराजाके एक मित्र धनी मारवाड़ी सेठ महाराजासे मिलने आये और महलके सुन्दर फर्नीचरको देखकर अपने बॅगलेके लिये वैसा ही फर्नीचर बनानेके लिये उन्होंने फर्नीचरवाले फर्मका नाम-पता लेकर उसको पत्र लिखा। महाराजाने जिसकी शिकायत की गयी थी, पर जिसका काम सच्चा और बढ़िया हुआ था उसी फर्मका नाम-पता

बतलाया था। मारवाड़ी सेठने उनको लिखा कि 'वे उक्त फर्मको एक लाखका कार्य देंगे, वे तुरंत ही बॅगला देखने जयपुर आ जायँ।' चौथे दिन उस फर्मका उत्तर मिला—लिखा था—'आपने महाराजा साहेबके कथनानुसार हमलोगोंको आर्डर देनेके लिये बुलाया, इसके लिये हम अभारी हैं। पर इस समय हमारे हाथमें बहुत अधिक काम होनेके कारण हम आर्डर स्वीकार नहीं कर सकेंगे, इसके लिये क्षमा करें। हम आपसे सिफारिश करते हैं कि आप अपना काम नीचे लिखी फर्मको दे दें, वह बहुत अच्छा फर्नीचर बहुत सावधानीसे बना देगी।' यों लिखकर नीचे उसी प्रतिद्वन्द्वी (महाराजाको झूठी शिकायत करनेवाले) फर्मका नाम-पता लिख दिया।

मारवाड़ी सेठने उस दूसरी फर्मको लिखा कि—'बम्बईकी अमुक फर्मने बढ़िया फर्नीचर बनानेके लिये आपका नाम बतलाया है। अतः आप आकर बॅगला देख लें और आर्डर ले जायँ।' जिस फर्मकी स्वयं शिकायत की थी, उसीने अच्छा काम करनेके लिये हमारा नाम बतलाया है, यह जानकर उस फर्मके मालिक बहुत ही शर्मिन्दा हो गये और जयपुरसे अच्छी-सी रकमका आर्डर लेकर जब वापस बम्बई लौटे तो सीधे उस फर्मकी दूकानपर जाकर उन्होने झूठी शिकायत करनेके लिये गद्‌गद कण्ठसे उनसे माफी मांगी और भविष्यमें कभी ऐसा न करनेका वचन दिया।

आज भी वे दोनो फर्में प्रेमसे हिल-मिलकर काम करती हुई बम्बईमें नामके साथ दाम भी कमा रही हैं।

—शान्तिलाल वोले

बच्चेसे सहानुभूति

यह सच्ची घटना दिनांक ४ । ६ । ६४ अपराह्ण दो बजेकी है । मेरा लगभग ११ वर्षका बच्चा, जिसका नाम ब्रजेशकुमार 'राजू' है, मुझसे बाटाकी चप्पल लेनेके लिये आग्रह करने लगा । कठिन धूप होनेके कारण मैंने उसे समझा-बुझाकर मना किया । पर उसके हठ करनेपर मैं स्वयं न जाकर उसे पाँच-पाँचके दो नोट देकर साइकिलसे भेज दिया । अभी वह साइकिल सीटपरसे नहीं चला पाता है । कैंची साइकिल चलाकर चौकपर स्थित बाटाकी दुकानपर जो घण्टाघरके पास है, गया । साइकिलमें ताला लगाकर वह अन्दर चप्पल लेने गया और चप्पल पसन्द होनेपर उसका बिल पेमेन्ट करनेके लिये अपनी जेबसे रुपया निकाला, भीड़ होनेसे बालक रुपया कैशियरको देनेकी कोशिशमें था कि उसके हाथसे दोनों नोट किसीने सफाईसे निकाल लिये । बालक तुरन्त रोने लगा । उसकी बातपर किसीने विश्वास नहीं किया, बल्कि उलटे कुछ लोग उसीको धूर्त बताने लगे । बच्चा तो था ही, वह अधिक घबरा गया । उन्हीं व्यक्तियोंमें एक उदार-हृदय सज्जन भी बैठे थे, उनकी कार बाहर खड़ी थी । उनकी धर्मपत्नी तथा बच्चे भी साथ थे । उन्होंने यह सब घटना देखी इसपर विचार किया । इसके बाद उन्होंने बच्चेको

बुलाया, अपने झोलेसे एक लड्डू देकर पानी पिलाया और दस रुपयेका नोट देकर उसके चप्पलका पेमेण्ट कर दिया। चप्पलका मूल्य ५.५० था, सेलटेक्स आदिके कुछ और पैसे हुए थे। कैशियरने उन पैसोंको काटकर शेष रुपये उक्त सज्जनको लौटा दिये और उन्होंने वे पैसे मेरे बच्चेको दे दिये। इसके बाद वे अपनी कारके ऊपर उसकी साइकिल रखकर मेरे घरके ही सन्निकटके चौराहेतक बच्चेको छोड़ गये। घर आकर बच्चा सारी घटना सुनाकर फूट-फूटकर रोने लगा और बच्चेने उक्त सज्जनकी उदारता बतायी तथा उनकी कारका नम्बर जो उसको याद था, ५५७७ यू० सी० एन० बताया। बालकके तथा बाटावालोंके पूछनेपर भी उस विशाल हृदयके व्यक्तिने अपना पता नहीं बताया। केवल इतना ही कहा कि 'मैं दिल्लीका हूँ।' इस घटनासे मैं तथा मेरा सारा परिवार जितना रुपये गुम होनेके गमसे दुखी नहीं हुए, उतना उस उदारहृदय सज्जनके विषयमें सोच-सोचकर आत्मविभोर हो गये। उन उदारहृदय सज्जनके प्रति हमारे कृतज्ञतापूर्ण अभिवादन।

—राजकुमार पाण्डेय



सब व्यवस्था करनेवाली भागवती शक्ति

यह घटना सन् १९५६ की है। मै अपनी मोटर-साइकिलपर बैठकर एक आवश्यकीय कार्यके लिये एल० एच० शुगर फैक्टरी काशीपुरको चला, जो कि नगरसे दक्षिण-पूर्वको ओर है। जब मेरी मोटर-साइकिल चौराहेपर पहुँची तो किसी अज्ञात शक्तिने उसको उत्तरकी ओर मोड़ दिया और कहा कि श्रीगरजिया देवीके मन्दिर चलो। मेरी समझमें नहीं आया और मै उस अन्तःप्रेरणासे प्रभावित हो उसी ओर चल दिया। वह मन्दिर रामनगर मण्डीसे लगभग नौ मील, काशीपुरसे छब्बीस मीलपर कोशी नदीके बीचमें एक बहुत ऊँची चट्टानपर है। इस चट्टानका घेरा लगभग दो-ढाई सौ फुट होगा। बड़ी-बड़ी बाढ़ें आयीं, सिमेंटके बनवाये हुए सरकारी बन्धे बह गये, मगर यह पतली चट्टान तीन-चार सौ फुट ऊँची वैसी ही बनी रही। यहाँ श्रीगरजिया देवीका मन्दिर है और मैं सन् १९३० में जब पहली बार जेल गया, तभीसे अपने स्वर्गीय पूज्य पिताजीकी आज्ञासे शक्तिका उपासक बना। मैंने चढ़ानेके लिये रामनगरसे प्रसाद खरीदा और श्रीगरजिया देवीपर प्रसाद चढ़ाकर वापस लौटा तो अपनी आदतके अनुसार मैं मोटर-साइकिल रोककर पहाड़ी बच्चों, स्त्रियों तथा पुरुषोंको प्रसाद बाँटने लगा। यहाँ जंगल-ही-जंगल है। एक जगह कराहनेकी आवाज सुनायी दी। मैं अन्दर जंगलमें घुसा तो

क्या देखता हूँ, एक नैपाली डुटियाळ पड़ा कराह रहा है। मैंने उसे प्रसाद दिया और पूछा क्या बात है तो उसने बताया कि मै दो दिनोंसे यहाँ पड़ा हूँ। मेरे पैरमें लकड़ी काटते कुल्हाड़ी लग गयी। मैंने उसपर अपनी कमीज बाँध दी है। रातको शेर दहाड़ता रहा और मै भगवतीका नाम लेता रहा। मैंने उसे प्रसाद खिला दिया और किसी प्रकार उसको रामनगर रानीखेत सड़कपर लाया। उस समय शाम हो गयी। कोई सवारी नहीं और मोटर-साइकिलपर आना मुश्किल था। मैं वहीं खड़ा रहा, अँधेरा होनेपर एक ट्रक आती दिखायी दी। मैंने बीच सड़कमें मोटर-साइकिल खड़ी कर दी। ट्रक रुकी, उससे उस घायलको ले जानेकी प्रार्थना की। पैसा देनेपर वह तैयार हो गया। रामनगरके अस्पतालमें उसको भर्ती कराया। सब प्रबन्ध करके जब वापस आया, तो सोचा कि आगे-से-आगे मुझे सचमुच वही सब विधान और व्यवस्था करनेवाली भगवती-शक्ति ही वहाँ ले गयी, जिसको उस घायल पहाड़ीके प्राण बचाने थे।

—डॉ० रामशरण सारस्वत काशीपुर



हृदयकी आदर्श विशालता

दास-प्रथाको लेकर अमेरिकामें गृहयुद्ध छिड़ा (१८६१-१८६५)। दास-प्रथा-समर्थक सेनाके प्रधान सेनाध्यक्ष तम्बाकूवाले वर्जीनिया राज्यके जनरल ली थे। जनरल ली इस युद्धमें परास्त हुए और उन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया। सन्धिकी शर्तें तय करने और उनपर हस्ताक्षर करानेके लिये दास-प्रथाविरोधी दलकी ओरसे जनरल ग्राण्ट ली के पास गये। ग्राण्टकी दशा उस समय वैसी ही थी, जैसी भीष्म और द्रोणके सामने अर्जुनकी हुआ करती थी। गृहयुद्धसे पूर्व ग्राण्ट लीको मातहतोंमें काम कर चुके थे और लीने उन्हें सैन्य-संचालनमें बहुत कुछ शिक्षा-दीक्षा भी दी थी। गुरुतुल्य लीको पराजित और मानभंगकी अवस्थामें देखकर ग्राण्ट विह्वल हो गये। उन्होंने लिखा, 'I felt like anything rather than rejoicing at the downfall of a foe who had fought so long and valiantly' ऐसे शत्रुके गिर जानेपर,

जो इतने दीर्घकालतक इतनी वीरतापूर्वक लड़ा हो, मुझे चाहे कुछ भी हुआ हो, परन्तु प्रसन्नता नहीं हुई ।'

युद्धका नियम है कि पराजित शत्रुके अस्त्र-शस्त्र और वाहन छीन लिये जाते हैं; परन्तु लीके केवल एक बार कहनेपर ही ग्राण्टने अफसरोंके व्यक्तिगत हथियार एवं घोड़े उन्हींके पास रहने दिये। लीके यह बतलानेपर कि 'खाद्य-सामग्री समाप्त हो जानेसे उसके २५,००० सैनिक भूखे हैं,' ग्राण्टने तुरन्त उसकी समुचित व्यवस्था करा दी। इसी समय युद्ध-मन्त्रीका सन्देश आया कि 'जनरल लीके आत्मसमर्पणकी खुशीमें तुरन्त १,००० तोपोंकी सलामी छोड़ी जाय।' ग्राण्टने लिखा कि 'ली—जैसे वीरको बार-बार यह स्मरण दिलाना कि तुम पराजित हो गये हो, शोभनीय नहीं है। विजयोत्सवके उपलक्षमें तोपें न छोड़ी जायँ, नहीं तो, लीसे अधिक मेरी आत्माको कष्ट पहुँचेगा।'

ग्राण्टकी प्रार्थना स्वीकृत हो गयी और तोपें नहीं छोड़ी गयीं।



पेडेरेवस्कीकी आदर्श उदारता

अमेरिकन राष्ट्रपति हरबर्ट क्लार्क हूवर (१८७४) एक लोहारके पुत्र थे। इनकी आयु केवल छः वर्षकी थी कि पिताका देहान्त हो गया। विधवा माता कपड़े सी-सीकर अपना और अपने बच्चोंका पेट पालती थी। कुछ दिनोंके बाद वह भी मर गयी। तब हूवरका पालन-पोषण इनके एक चाचाने किया। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इनका विद्यार्थी-जीवन बड़ी दरिद्रावस्थामें कटा। जब ये कैलीफोर्नियाके विश्व-विद्यालयमें पढ़ते थे, तो समाचारपत्र बेच-बेचकर अपनी पढ़ाईका खर्च चलाते थे। इन्हीं दिनों पोलैंडके विश्वविख्यात संगीतज्ञ पेडेरेवस्की (Paderewski) अपनी मण्डलीके साथ कैलीफोर्निया पधारे। हूवरको पैसा कमानेकी अच्छी तरकीब सूझी। उन्होंने पेडेरेवस्कीसे २,००० डालरमें ठेका कर लिया कि आपको अपने प्रदर्शनका शुल्क २,००० डालर मिलेगा और जो खर्च होगा तथा जो टिकिटोंकी बिक्री होगी, वह सब हमारी। संगीतज्ञ तैयार हो गये; परन्तु दुर्भाग्यसे टिकिट बहुत कम बिके। २,००० डालरका शुल्क कैसे दिया जाय, यही एक समस्या बन गयी, लाभ तो कहाँसे हो। कोई और उपाय न जान हूवरने सारी स्थिति पेडेरेवस्कीके सामने रक्खी और उनकी उदारता तथा क्षमाशीलताके लिये अपील की। उदार हृदय पेडेरेवस्कीने उत्तर दिया, 'लड़के ! मै तुम्हें क्षमा करता हूँ। भविष्यमें फिर कभी ऐसी भूल न करना। टिकिटोंकी जो आय हुई हो, उससे हालका किराया, बिजली

इत्यादिके बिल चुकाओ और जो कुछ बचे, वह हमें दे दो। हम उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेंगे।'

हूवरने ऐसा ही किया। जाते हुए पेडेरेवस्कीने हूवरको अपने पास बुलाया और उनके हाथपर कुछ डालर रक्खे। हूवरने आश्चर्य-चकित होकर पूछा, 'यह क्या?' पेडेरेवस्कीने हूवरकी पीठ थपथपाते हुए कहा—'तुमने टिकिट बेचनेमें कठोर परिश्रम किया है लाभकी आशासे। मै चाहता हूँ कि मेरे नामपर कोई व्यक्ति निराश न जाय। तुम बच्चे हो। बच्चोंसे भूल हो ही जाती है।'

हूवरने डालर ले लिये और उनका हृदय कृतज्ञतासे भर गया। बादमें इन्हीं हूवरने खानोंके उद्योगमें करोड़ों रुपया कमाया। प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४–१८) की समाप्तिपर यूरोपकी आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाने १० करोड़ डालर यूरोपवासियोंकी सहायताके लिये भेजे। इस सारी रकमको बाँटनेके पूर्ण अधिकार हूवरको दिये गये और उस समय हूवर पेडेरेवस्कीके पोलैंडको नहीं भूले।

यह पेडेरेवस्कीकी उदारताका ही फल था कि हूवर ऋण-ग्रस्तोंसे कभी कठोर व्यवहार नहीं करते थे। जब वे राष्ट्रपतिके पद-पर काम कर रहे थे तो १९३० की भयानक मन्दी आयी। यूरोपियन राष्ट्रोंने अमेरिकी ऋण चुकानेमें अपनी असमर्थता प्रकट की और हूवरने उनसे अत्यन्त उदारतापूर्वक व्यवहार किया।

—राजेन्द्रप्रसाद जैन, तिस्सा



भगवत्कृपासे प्राप्त हैजेकी साधारण परन्तु रामबाण दवा

घटना १९४७ ई० की है। मेरे छोटे भाई श्री एस० आर० मिश्र आगरेमें थे। वहाँसे उन्होंने लिखा कि श्रावण मासमें मथुरा-वृन्दावनमें बड़ा आनन्द रहता है। इसलिये यदि तुम अमुक तारीखको वहाँसे चलकर आगरे आ जाओ तो वहाँसे एक अनुभवी व्यक्तिको लेकर भ्रमण किया जाय। मैंने स्वीकृति-पत्र भेज दिया। उस समय मैं पलिया (नसीराबाद) में रहता था। घर और बच्चोंकी देख-रेखका भार अपने बाबा श्रीपुत्तूलालजीको निवास-स्थान हरिपुरसे बुलवाकर सौंप दिया और मैं नियत कार्यक्रमके अनुसार सिघोली स्टेशनपर पहुँचा। यहाँ आनेपर पता चला कि मेरे छोटे चाचा श्रीअवधेशप्रसादको घरपर हैजा हो गया है, इसलिये घरसे बाबाको बुलानेके लिये एक आदमी नसीराबाद भेजा गया है। अब मैं बड़े असमंजसमें पड़ा। इसी परेशानीमें मैं अपने दूसरे चाचा श्रीमुक्ताप्रसादजीसे सलाह लेनेके लिये शामकी ही गाड़ीसे कमलापुर गया। उनको सारी परिस्थिति बतला दी और उनसे मैंने उचित सलाह माँगी। उन्होंने भी कहा कि इस तरह तुम्हारा बाहर जाना ठीक नहीं है; परन्तु

मेरी मथुरा-वृन्दावन जानेकी उत्कट अभिलाषाको देखकर वे बोले कि 'देखो, एक बड़े अच्छे महात्माजी फरदहनसे आये हुए हैं। उनसे भी बात कर ली जाय।' हमलोग उनके पास पहुँचे और सारा हाल उनसे बताया। वे कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले कि 'अगर इसी समय रातमें ही कोई आदमी हरिपुर जाय और मेरी बतायी हुई औषधि सेवन करावे तो रोगी अवश्य स्वस्थ हो जायेगा।' अब रातोंरात पाँच मील गाँवको जाना, वह भी जहाँ हैजेका प्रकोप हो, बड़ी कठिन समस्या थी। मगर मथुरा-वृन्दावन जानेकी मेरी ऐसी प्रबल इच्छा थी कि मैं आगमें भी कूदनेके लिये तैयार था।

अतः करीब आठ बजे रातको सायकिलद्वारा मैं कमलापुरसे हरिपुरके लिये रवाना हुआ। मेरे साथ चाचाजीने अपने लड़के चन्द्रशेखरको भी कर दिया था। इस तरह नौ बजे रातको हम गाँव पहुँचे। वहाँ कोहराम मचा हुआ था। चाचाजी जमीनपर पड़े पीड़ासे कराह रहे थे। बाबाजी भी वापस आ चुके थे। मैंने पहुँचते ही सबको ढाढ़स बँधाया और महात्माजीकी बतायी हुई दवाका प्रयोग किया। पहली खुराक दी गयी, पन्द्रह मिनटके बाद दूसरी खुराक देते ही कुछ पेशाब उतरा, आधे घंटेके बाद तीसरी खुराक देनेपर खुलकर पेशाब उतरा, दर्द कम पड़ा और वे सो गये।

सवेरे उनकी हालत करीब-करीब ठीक हो गयी। तब चाचाजीसे मैंने अपने प्रोग्रामके बारेमें पूछा, उन्होंने गद्गद कण्ठसे कहा कि 'बेटा! यह सारा कौतुक उन्हीं गोपीजन-वल्लभके प्रभाव तथा महात्माजीके आशीर्वादसे ही तो हुआ है, नहीं तो, ऐसे मरणासन्न

रोगीको कौन बचानेवाला था। अब तुम निर्भय होकर अवश्य प्रस्थान करो, मैं भी आज ही शामतक नसीराबाद अवश्य पहुँच जाऊँगा।'

निदान, मैं सिधौली आकर साथ जानेवाले बच्चोंको लेकर प्रोग्राममें कुछ विलम्ब हो जानेके कारण बसद्वारा ही लखनऊ होता हुआ कानपुर पहुँचा। वहाँपर ट्रेन पकड़कर निश्चित समयपर ही आगरा पहुँच गया। वहाँ भैया स्टेशनपर ही मिले। घर जाकर आद्योपान्त हाल बताया। सबने भगवान् श्रीकृष्णकी कृपाका प्रत्यक्ष प्रभाव बताया। फिर आनन्दपूर्वक मथुरा-वृन्दावनकी यात्रा सम्पन्न हुई और करीब पन्द्रह दिनोंके बाद मैं कुशलपूर्वक वापस आ गया।

पाठकोंकी जानकारीके हेतु महात्माजीका बताया हुआ दवाका नुस्खा लिखता हूँ ताकि जनसाधारणतक महात्माजीकी कृपासे लाभ उठावे। मगर इसमें कोई भी पैसा कमानेके प्रयत्न करनेका साहस कदापि न करें।

१—खस (सींक अथवा ताजी जड़)	=३ मासा	एक खुराक
२—तुलसीदल (ताजी पत्ती)	=१० अदद	
३—काली मिर्च	=७ अदद	

ये तीनों चीजें ताजे पानीमें पीसकर कपड़ेसे छानकर बिना ही गरम किये रोगीको पिला दे। स्वादके लिये कुछ मीठा या नमक भी पिलाया जा सकता है।

—कन्हैयालाल मिश्र (स० रजिस्ट्रार कानूनगो)

प्रभु-कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव

यह घटना गत वर्ष चार अगस्तके रात्रिकी है। दो मास पहले ही मेरे पतिदेवका स्थानान्तरण वाराणसी हुआ था। हमलोग सपरिवार वाराणसी आ गये थे। चार अगस्तको मेरे पतिदेव दौरेपर मिरजापुर गये। बॅगलेपर चौकीदार था तथा एक चपरासी एवं एक मेरा निजी नौकर। ये सब इसी बँगलेमें रहते थे। रात्रिमें सोये हुए थे। मुझे किसी प्रकारका भय न था। मै सब प्रकार अपनेको सुरक्षित समझती थी और भगवान् श्रीश्यामसुन्दरको अपना रक्षक समझती थी। मै और मेरे चारों बच्चे सोये हुए थे। अन्दर ऑगनमें मेरे घरका नौकर सोया था। रात्रिके करीब ढाई बजे थे। बाहरसे किसीने कहा—'कोई है, कोई है?' मैने समझा कोई तारवाला होगा। चौकीदार तार ले लेगा; किन्तु दूसरे ही क्षण मेरे

कमरेके दरवाजे, जो कि शीशेके ही थे, टूटने शुरू हो गये। मैंने सोचा कि 'मेरा चपरासी कहीं पागल तो नहीं हो गया है?' मैं दरवाजेके पास गयी। मैंने पूछा—'कौन है?' जवाबमें बाहर जो आदमी खड़ा था, उसने मुझे पिस्तौल दिखलाया और कहा—'चुप-चुप'। मै तो डरके मारे चीख पड़ी और सीधे अन्दर घरका दरवाजा खोलती हुई आँगनमें पहुँची, जहाँ मेरा नौकर सोया था। मैंने उससे कहा कि 'डाकू कमरेका दरवाजा तोड़ रहे हैं।' फिर घबराहटमें पता नहीं मैंने क्या कहा। वह एक मोटा दण्डा लेकर कमरेमें आ गया, तो दो आदमी खिड़कीसे और दो आदमी दरवाजेसे धमकाने लगे कि सिटकनी खोल दो, नहीं तो तुमको मार डालेंगे।' लेकिन वह लड़का जो सिर्फ सोलह-सत्रह सालका रहा होगा, बड़ा बहादुर, वफादार और साहसी था। उसने कहा कि 'तुम मेरे मरनेपर ही अन्दर आ सकते हो, और दरवाजेके पास ही लाठी लिये खड़ा रहा तथा जोर-जोरसे चिल्लाता रहा कि 'चोर हैं, दौड़ो', किन्तु उस समय पानी बरस रहा था इसलिये पड़ोसी भी कैसे सुनते। मेरे घबराहटकी तो सीमा न थी। चपरासी तथा चौकीदारको तो वे लोग पहले ही मारकर भगा चुके थे। घरमें अकेली मैं और वह नौकर—'सिर्फ दो आदमी थे। बच्चोंको, जो मेरे साथ शोर सुन आँगनमें आ गये थे और जब सब ओरसे अपनेको असहाय पाया तो अत्यधिक घबराये हुए थर-थर काँप रहे थे, मैंने गुसलखानेमें बन्द कर दिया। सुना था कि ऐसे लोग बच्चोंको भी मार डालते हैं। मैं भगवान्से प्रार्थना कर रही थी कि वे लोग भले ही सब सामान ले जायँ; लेकिन मेरे नौकर,

बच्चोंको और मुझसे कुछ न कहें। वे आठ आदमी थे और वहाँ सिर्फ एक छोटा सोलह सालका साहसी लड़का था, जो उन्हें रोके था और जोर-जोरसे सहायताके लिये चिल्ला रहा था। जब मैं सब ओरसे निराश हो गयी और बच्चोंको भयभीत देखा, तब मैंने उनसे कहा कि 'सिर्फ भगवान्‌का ही आसरा है। वही अशरणशरण करुणासागर हमारी रक्षा कर सकते हैं। उन्हींका नाम लो।' जब सारे सहारे समाप्त हो जाते हैं, जब एकमात्र प्रभुका सहारा दीखता है, तभी सच्चे हृदयसे उन्हें पुकारा जाता है। मैं अब भी आश्चर्य करती हूँ कि उस समय मेरे सब बच्चे अति कातर वाणीमें 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' उच्चारण करने लगे। पाँच मिनट भी नहीं बीते होंगे कि एकाएक कमरेमें जो नौकर चिल्ला रहा था, उसकी आवाज एकदम बन्द हो गयी। मैंने समझा कि कहीं उसको मार तो नहीं डाला अथवा मुँहमें कपड़ा तो नहीं ठूँस दिया। प्रभुका नाम लेनेके कारण मुझे अपने अन्दर शक्ति मालूम हुई और मैं कमरेकी ओर यह देखनेके लिये भागी कि 'जो लड़का हमारे लिये अपने प्राण हथेलीपर लिये खड़ा है, कहीं उसे वे लोग मार न दें, इसके पहले मैं अपनी जान दे दूँगी।' ऐसी भावना लेकर मैं कमरेमें घुसी तो देखती हूँ कि जैसे भगवान् साक्षात् ही सहायता करनेको अपने मधुर नामोंको विश्वासपूर्वक पुकारनेवालेकी रक्षा करनेके लिये आ गये हों। हमारे पड़ोसके ही बँगलेमें सी० ओ० लाइन्स श्रीकमलारामजी रहते थे। जब हमारे चौकीदारको डाकुओंने मारकर भगा दिया था तो यह बेचारा गिरता-

पड़ता वारिसमें उन लोगोंकी आँख बचाकर पीछेकी ऊबड़-खावड़ रास्तेसे श्रीमल्ल साहबके यहाँ पहुँचा, और उनके सिपाहीको जगाया। उसने शीघ्र ही अपने साहबको जगाया और कहा कि 'गोस्वामी साहब घरपर नहीं है और डाकू आ गये है। बहूजी और बच्चे अन्दर हैं।' वे परोपकारी सज्जन तथा उनकी धर्मपत्नी तुरन्त जग गये। उनकी साहसी पत्नीने कहा कि 'वे अकेली हैं। आप शीघ्र ही जाइये।' वे अपना रिवाल्वरमें गोली भरकर वैसे ही नंगे पाँव वारिसमें भींगते हुए अपनी जानकी परवा न कर हमारे यहाँ अपने दो सिपाहियोंको लेकर आ पहुँचे और उन डाकुओंको धमकाया कि 'यदि नहीं भागोगे तो गोली चला देंगे। डाकुओंने समझा कि बहुत आदमी सहायताको आ गये, अतः वे सब शीघ्र ही जिधरसे मौका लगा भाग गये। जब मैं कमरेमें आयी तो वे ही परोपकारी सज्जन भगवान्‌के स्वरूप बनकर हमारी रक्षाके लिये आ गये थे। मैंने तुरंत उनके चरण पकड़ लिये। धन्य हैं, उनकी वीर पत्नी, जिन्होंने प्राणोंका भय होते हुए भी एक दूसरी नारी एवं उसके बच्चोंकी रक्षाके लिये अपने पतिको भेज दिया। उस दिन मुझे प्रभुके नामोच्चारण एवं उनकी असीम कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। जय हो भगवान् दीनबन्धुकी !

—धर्मपत्नी गोस्वामी श्रीहरिजीवनलालजी, जिला सहायता तथा पुनर्वास-अधिकारी—वाराणसी।

गरीबकी ईमानदारी

घटना अभी कुछ ही दिनों पहलेकी है। तारीख १६-५-६४ के दिनको करीब १० बजेकी है। सोजतरोड़में श्रीसीतारामजी नामक ख्यातिप्राप्त स्वर्णकार हैं। आपकी दूकानपर तीन व्यक्ति और भी काम करते हैं। दिनांक १६ को सीतारामजीने गलेमें पहननेकी चैन या कनकतीको साफ करनेके लिये तेजाबके प्यालेमें डाला; किन्तु अनजानसे तेजाबके प्यालेके पानीको बदलनेके लिये, सत्य-नारायण नामक लड़केने, जो सीतारामजीकी दूकानपर रहता है, रास्तेमें उड़ेल दिया। कनकती रास्तेमें गिर गयी। उसकी लागत करीब पाँच सौ रुपयेकी थी। यह जानकर कि कनकती खो गयी है, सभी लोगोंने बहुत तलाश किया, पर कोई पता न चला। सभी लोग परेशान एवं उदास थे, परंतु कनकतीका किसीको भी ध्यान न था। सत्यनारायण बेचारा उदास बैठा था, लेकिन सीतारामजी धैर्यकी

मूर्ति बने विचार रहे थे और उन्होंने सत्यनारायणको कुछ भी नहीं कहा। कनकती रास्तेमें वंशीलाल राठौड़के लड़केको मिल गयी थी और वह अपने घरपर ले गया था। जब शामको वंशीलाल घरपर आया तो बच्चेने कहा कि 'मुझे यह मिली है।' इधर मुहल्लेमें बात चल रही थी कि सीतारामजीकी कनकती खो गयी है। वंशीलाल घर आते ही दो पड़ोसियोंको साथ लेकर सीतारामजीकी दूकानपर आया और कनकती उन्हें दे दी। सीतारामजीकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा और उन्होंने भी वंशीलालके लड़केको सोनेके कर्णफूल पहना दिये।

ऐसी ईमानदारी कोई बहुत बड़ी महत्त्वकी चीज नहीं, यह तो स्वाभाविक सभीमें होनी चाहिये; परंतु वर्तमान युगमें, जहाँ बड़े-बड़े अमीर बेईमान हो रहे हैं, दूसरोंके हकके पैसोंपर मन चला लेते हैं, वहाँ गरीबकी ईमानदारी बहुत बड़ी सराहनीय बात है और असलमें ईमानदारी बची भी है—कुछ गरीबोंमें ही। भारतमें ऐसे ही व्यक्तियोंकी आवश्यकता है।

—कन्हैयालाल वर्मा, सोजतरोड



जॉन एडम्सकी न्यायप्रियता

अमेरिकन राष्ट्रपति जॉनएडम्स (१७३५—१८२६) अमेरिकन स्वातन्त्र्य-युद्धके प्रमुख नायकोंमेंसे थे। अमेरिकन स्वातन्त्र्य-युद्धके बहुत पहिलेसे ही अमेरिकामें ब्रिटिश अधिकारियोंके विरुद्ध सर्वत्र रोष और घृणा फैली हुई थी। फलतः सन् १७७० ई० में एक दिन एक अमेरिकन भीड़ने एक अंग्रेज सन्तरीको घेरकर बुरी तरह मारना-पीटना आरम्भ किया। समाचार पाकर अंग्रेज अधिकारी कैप्टन प्रीस्टन छः सैनिकोंके साथ अंग्रेज सन्तरीको बचानेके लिये दौड़ा। उत्तेजित भीड़ने उसकी भी बुरी तरह मरम्मत की और एक अंग्रेज बेहोश होकर गिर पड़ा। आत्मरक्षाका कोई उपाय न देख अंग्रेजोंने भीड़पर गोली चला दी, जिससे दो अमेरिकन मारे गये और तीन बादमें अस्पतालमें जाकर मर गये। प्रीस्टन और उसके छः सैनिक हत्याके अपराधमें पकड़े गये और मुकदमा चालू हो गया।

इस समय अमेरिकन जनतामें प्रीस्टनके विरुद्ध बहुत उत्तेजना थी। यदि प्रीस्टन जेलमें बन्द न कर दिये जाते तो सम्भवतः जनता उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालती। प्रीस्टनको सारे अमेरिकामें एक भी वकील पैरवीके लिये नहीं मिला। इसी समय जॉन एडम्सने घोषणा की कि 'प्रीस्टन निर्दोष है, उसने जो कुछ किया आत्मरक्षार्थ किया, उसकी पैरवी मैं करूँगा।' जॉन एडम्सने मुकदमेकी पैरवी की और प्रीस्टन निर्दोष छूट गये।

जॉन एडम्स एक कट्टर धार्मिक घरानेके थे। उनका विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्तिको केवल भगवान्‌को ही प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उसकी प्रसन्नतामें ही सबकी

प्रसन्नता है और उसकी अप्रसन्नतामें ही सबकी अप्रसन्नता है। जॉन एडम्सका विश्वास सच्चा सिद्ध हुआ। स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके पश्चात् जॉन एडम्स अमेरिकाके उपराष्ट्रपति बनाये गये और जब जार्ज वाशिंगटनने तीसरी बार राष्ट्रपति बनना अस्वीकार कर दिया तब वे बहुमतसे राष्ट्रपति चुने गये।

एडम्स-वंश अमेरिकाके अत्यन्त प्रतिभाशाली वंशोंमें है। जॉन एडम्सके जीवनकालमें ही उनके सुपुत्र जॉन क्विन्सी एडम्स अमेरिकाके राष्ट्रपति चुने गये। यह सौभाग्य कि बाप-बेटे दोनों राष्ट्रपतिके पदतक पहुँचे, एडम्स-वंशके अतिरिक्त आजतक और किसीको यह प्राप्त नहीं हुआ। जॉन एडम्सके पौत्र चार्ल्स फ्रांसिस एडम्स अमेरिकाकी ओरसे ब्रिटेनमें राजदूतके पदपर रहे; जो उस समय बड़े महत्त्वका समझा जाता था।

जॉन एडम्सके प्रपौत्र हेनरी एडम्सका स्थान अमेरिकाके प्रधान साहित्यकों और विचारकोंमें है। हेनरी एडम्स गीताके अनन्य प्रेमी थे। अपनी लंकायात्रामें जब वे थांडीके बौद्ध-मन्दिरमें पहुँचे तो लगभग आध घण्टेतक पवित्र वृक्षके नीचे ध्यानमग्न बैठे रहे और उसके पश्चात् उन्होंने एक लम्बी कविता लिखी (Buddha and Brahma बुद्ध और ब्रह्म)। जिसमें उन्होंने बुद्धके संन्यास-मार्गकी अपेक्षा गीताके निष्काम कर्मयोगको श्रेष्ठ ठहराया है। मर्सनकी तरह हेनरी एडम्सने भी ब्रह्मसे ब्रह्मनिष्ठ योगी—निष्काम योगीका अर्थ लिखा है। यह कविता पहली बार अमेरिकन पत्रिका येल रिव्युमें १९१५में छपी थी।

—श्रीराजेन्द्रप्रसाद जैन, तिस्सा

स्त्रीरूपमें देवी

१५ अप्रैलकी घटना है । मै बैंकसे अपना चार हजारकी कीमतका जेवर और दो हजार रुपये नकद निकलवाकर पर्समें रखकर ला रही थी । मेरे पास एक डलियामें बाजारसे लायी हुई कुछ और भी चीजें थीं ! मैने अपना पर्स इस डरसे कि कहीं रास्तेमें इधर-उधर न हो जाय, उस टोकरीमें ही रख दिया था । मै लोकल बसमें आ रही थी । न जाने कैसे मेरा पर्स टोकरीमेंसे बसमें गिर गया । जब मैंने घर आकर देखा तो पर्स न देखकर मेरी हालत खराब हो गयी । मैंने सोचा कि मै आफिस अपने पतिको फोन करूँ । मै यह सोच ही रही थी कि इतनेमें क्या देखती हूँ कि एक भद्र महिला मेरा पर्स लिये दरवाजेपर खड़ी है; क्योंकि उस पर्समें मेरी नोटबुक थी, जिसपर मेरा नाम-पता लिखा था । जिससे उन्हें मेरा मकान फौरन मिल गया । मै तो देखकर गद्गद हो गयी । मुझे तो स्त्रीरूपमें वह देवी दिखायी दीं । आजकलके जमानेमें इतनी निर्लोभता कठिनतासे ही देखनेमें आती है । मैंने उनका नाम-पता पूछा तो उन्होने बड़ी कठिनतासे बताया कि मेरा नाम सुशीला गुप्ता है । उन्होने कहा कि मैंने तो अपना फर्ज अदा किया है; इसमें प्रशंसाकी क्या बात है; परंतु मेरा मन नहीं मानता कि जिसने मेरे ऊपर इतना बड़ा उपकार किया; मै उसकी प्रशसामें दो शब्द भी न कहूं । मेरी लड़कीकी शादी है, इसीलिये मै जेवर लायी थी । यदि न मिलता तो पता नहीं मेरी क्या दशा होती ।

—सरला देवी

बड़ोंका पुण्य

निरंजनके हिस्सेमें बाप-दादोंकी सम्पत्तिके बँटवारेमें डेढ़ बीघा जमीन अहमदाबादके नजदीक मिली थी। आजसे बारह वर्ष पूर्व उसके दाम दो हजार भी नहीं थे। फिर 'जो जोते उसकी जमीन' का कानून बन गया। अतः सरकारी कागजोंमें वह जमीन जोतनेवाले किसानके नामपर चढ़ गयी। सरकारी कीमतके अनुसार केवल तीन सौ रुपयेमें जमीन दे देनेका आदेश हो गया। निरंजन मध्यम वर्गका युवक था। मुश्किलसे नौकरी करके कुटुम्ब चलानेभरका कमा पाता था। अब तो जमीन भी हाथसे निकल जानेकी नौबत आ गयी। इससे निरंजनको बड़ी परेशानी हुई।

परंतु ईश्वरने किसानको सद्‌बुद्धि दी। उसने निरंजनसे कहा—'तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारी जमीन मुझे नहीं लेनी है। चलो; मैं कोर्टमें बयान दे देता हूँ कि उसके मालिकको ही दे दी जाय।'

निरंजनको यह बात नयी-सी लगी। उसने पूछा—'पर तुम इस प्रकारका बयान किसलिये दोगे? जहाँ मुफ्तमें जमीन मिलती हो, वहाँ कोई ऐसा क्यों करेगा?'

किसानने कहा—'बात सच है, कानूनके अनुसार ही सरकार मुझे जमीन दे रही, परंतु मुझे तुम्हारे दादाजीका ऋण उतारना है। सुनो, आजसे सत्तर वर्ष पूर्व तुम्हारे दादाने मेरे पिताको अमुक रुपये देकर सहायता की थी। उस समय उतने रुपये हमें कोई नहीं दे रहा था, अतएव हमारे लिये वे रुपये एक बड़ी भारी सहायता थी। हमलोग तुम्हारे दादाको वे रुपये लौटा नहीं पाये, पर हम उन्हे भूले नहीं। उन्हींके बदलेमें तुम्हारी जमीन मैं वापस दे रहा हूँ।'

इस बातके सुनते ही निरंजनकी आँखोंसे आँसू ढलक पड़े और उसने कहा—'ऐसा ही होता है, बड़ोंके पुण्यने आज इस विपत्तिके समय हमारी सहायता की।'

दूसरे ही दिन कोर्टमें जाकर किसानने कानूनके अनुसार लिखावट कर दी। जमीन निरंजनके नामपर चढ़ गयी। अब पन्द्रह हजार रुपये मूल्यपर वह जमीन बिकी है और उसके रुपये निरंजनको मिल गये हैं। निरंजनकी आँखोंके सामने दादाजीके इस शुभ कार्यकी स्मृति ठहरा रही है।

—शान्तिलाल दोनानाथ मेहता

प्रजावत्सल राजा

भावनगर स्टेटके समयकी बात है। उस समय भावनगरकी गद्दीपर महाराज कृष्णकुमारसिंहजी थे। उनके समयमें एक बार सारे राज्यमें भयंकर अकाल-जैसी परिस्थिति पैदा हो गयी।

लोगोंका कष्ट दूर करनेके लिये राज्यकी ओरसे राशनिंगकी दूकानें खोली गयीं; पर इन बुरे दिनोंमें महुवाके पास एक वेलंगर गाँवमें नया ही प्रसंग बना।

सारे गाँवके सब किसानोंके कूएँ सूख गये थे। पर उनमें एक किसान बड़ा भाग्यवान् निकला। दो बार जोड़नेपर भी कूएँका पानी नहीं चुकता था।

किसानको बड़ा आनन्द मिला और सबेरेसे शामतक उसके घरके बूढ़े-बालक सभी खेतमें जुट गये। खूनका पानी करके उन्होंने ढाई बीघेमें जुवार बोयी। खेती पकी और देखते-ही-देखते खेतमें जुवारके दो ढेर लग गये। किसानको बड़ी राहत मिली कि अब बच्चे भूखों नहीं मरेंगे।

किसान यह सोच ही रहा था कि सामने सरसराती एक घोड़ागाड़ी आती दिखायी दी। थानेदार साहेब बड़े रोबदाबके साथ गाड़ीसे नीचे उतरे।

'अरे! यह जुवार तेरी है?' साहेबने रोबके साथ पूछा।

'हाँ जी, साहेब! कूएँमें पानी था, इससे बच्चोंके भाग्यसे हो गयी।' किसानने नम्रतासे उत्तर दिया।

'इसमेंसे आधी जुआर तुझे राज्यको देनी पड़ेगी।' थानेदार साहेबने जुआरके ढेरकी ओर कड़ी नजरसे देखा।

'अरे साहेब! इस जुआरसे तो अगली फसलतक मेरे बच्चोंका भी काम नहीं चलेगा, फिर मै इसे कैसे दे सकूँगा।' किसानने गिड़गिड़ाकर कहा।

'अरे; तू तो बड़ा मुँहफट मालूम होता है। मेरे सामने बोलता है। आगामी कल मै गाड़ा (गाड़ी) भेजूँगा, उसमें यदि जुवार नहीं भरी तो फिर जेलके सींकचोंमें ढकेलना पड़ेगा।' अपने घरकी फौजदारी चलाकर थानेदार साहेब चले गये।

'अरे! यो परेशान क्यो हो रहे हो? मैंने सुना है—महाराजा साहब गोपनायके बॅगलेपर हवा खाने आये हुए है। करो न जाकर उनसे अर्ज, जो इस थानेदारको भी पता लगे कि जो झूठी-झूठी घरकी कानून निकाल रहा है।' दूरसे बात सुनकर किसानकी घरवाली हिम्मत बँधाने पास आ गयी थी।

जैसे बुझते दीपकमें नया तेल पड़ा हो, वैसे ही किसानकी आँखें चमक उठीं। अन्यायके सामने इन्साफ माँगनेका नया विश्वास पैदा हो गया। सन्ध्या होते ही घरवालीको जुवार सँभालनेके लिये खेतपर छोड़कर किसान महाराजा साहेबको फरियाद सुनाने अँधेरेमें ही चल दिया और पौ फटते-फटते बॅगलेपर पहुँच गया।

सूरज उगा, अतः महाराजा साहेब घूमनेके लिये निकले। किसान साहस बटोरकर पास गया; पर जबान नहीं खुली।

आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली और वह महाराजाके पैरोंपर पड़ गया।

श्रीकृष्णकुमारसिंहजीने किसानको उठाया और खूब दिलासा देकर उससे बात पूछी। किसानने अपने ऊपर होते जुल्मकी बात सुनायी। गरीब किसानकी जुवारको थानेदार बेकानूनी हजम करना चाहता है—यह सुनते ही महाराजकी आँखें लाल हो गयीं। उन्होंने उसी समय कागज मँगवाकर थानेदारीकी बरखास्तगीका हुक्म लिख दिया।

राज्यके दो आदमियोंको अपनी मोटर देकर उस किसानके साथ भेजा।

घरवाली जुवारकी देख-रेख कर रही थी। थानेदार साहब गाड़ा (गाड़ी) भेजें, इसके पहले ही वे नौकरीसे छूट गये। गरीब किसानके बच्चोंको रोटी मिली। इससे इतना ही नहीं हुआ, सारे गाँवसे अधिकारियोंका अन्याय दूर हो गया। राजाके प्रति लोगोंकी भक्ति जाग उठी। आज भी श्रीकृष्णकुमारसिंहजीके वंशका कोई उस बेलंगर गाँवके पाससे निकलता है तो सारा गाँव तन-मन-धनसे उसका स्वागत करता है। (अखण्ड आनन्द)

—चीमनलाल श्यामजी भाई पुरोहित



न्याय

[घटना छोटी, पर सिद्धान्त बड़ा सच्चा]

वर्तमानकालमें प्रायः न्याय भी कागजके कुछ टुकड़ोंपर बिकने-सा लगा है। अपने साथ घटित उन दो घटनाओंको देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया, जिनमें 'ईश्वरके यहाँ अब भी बावन तोले पाव रत्ती सही-सही न्याय होता है।' यह स्पष्ट झलकता है।

घटनाएँ बहुत पुरानी नहीं, कुछ दिनों पूर्वकी ही हैं। एक दिन मैं अपने एक साथीके साथ बाजारसे गेहूँ खरीदने गया। दूकानदार गेहूँ तौलने लगा, मैं देखने लगा। वह भूलसे ५ किलो गेहूँ अधिक तौल गया। मुझे यह सब ज्ञात था। मेरी आत्माने नहीं चाहा कि मैं उनको घर लाऊँ, लेकिन मनने आत्माका साथ नहीं दिया। मन कहने लगा—'तुम्हारा इसमें क्या दोष! तुमने कोई चोरी थोड़े ही की है।' मैं आत्मा और मनके इस संघर्षमें कुछ भी निर्णय नहीं कर सका। तब चुपकेसे मैंने अपने साथीसे कहा—'दूकानदारने भूलसे पाँच किलो गेहूँ अधिक तौल दिये हैं, उन्हें वापिस कर देना चाहिये।'

साथीने उत्तर दिया—'तुम भी अजीब हो। उसे बतानेकी क्या आवश्यकता है? गल्ती उसकी है।' मनकी जीत हो गयी और मनकी जीत तो पहले ही थी, नहीं तो किसीसे पूछनेकी क्या आवश्यकता। आत्माकी बात मानकर गेहूँ वापिस कर दिये जाते। अस्तु! मैं उन पाँच किलो अधिक गेहूँओंको ले आया। संयोगसे उसी समय पिसाने भी जाना

पड़ा। गेहूँ पिसाकर ले आया और ऊपर सीढ़ियोंपर चढ़ रहा था कि आटेके पात्रका कुन्दा टूट गया और पात्र नीचे एक ऐसे स्थानपर गिरा, जहाँ उसमेंसे ठीक ५ किलो आटा नालीमें गिर गया, शेष एक पवित्र स्थानपर सुरक्षित रहा। मै समझ गया कि यदि गेहूँ इस प्रकार बिखरते तो शायद बीन भी लिये जाते, इसलिये आटा ही बिखरा ताकि उसे उठाया न जा सके।

इसके कुछ दिनों पश्चात् मै इस घटनाको पूर्णतः भूल गया। कुछ रुपये लेकर पुस्तकें खरीदने जा रहा था। रास्तेमें ही आवश्यकताकी कोई दूसरी वस्तु भी खरीदनी पड़ गयी। वस्तुकी कीमत थी तीन रुपये। मैंने दूकानदारको दो-दो रुपयेके दो नोट दे दिये। उसे एक रुपया वापिस करना चाहिये था; किन्तु भूलसे यह समझकर कि मैंने उसे पाँच रुपयेका नोट दिया है, उस दूकानदारने मुझे दो रुपये वापिस कर दिये। मुझे पता था कि वह एक रुपया अधिक वापिस कर रहा है, फिर भी मै पैसेके लोभमें फँसकर उन दोनों रुपयोंको लेकर आगे बढ़ गया। वहाँ जाकर किताबे खरीदीं और जब पैसे देने लगा तो देखा कि जेबसे किसीने पाँच रुपयेका एक नोट गायब कर लिया था।

अचानक ही मुझे पहली घटना याद आ गयी। विचार करने लगा, 'पहली बार कुछ दण्ड नहीं मिला था। अबकी बार एकके चार ब्याजके देने पड़े। इससे सुन्दर न्याय और क्या हो सकता है?'

—बी० एन० शर्मा, एम० ए०, साहित्यरत्न

इन्द्राक्षी-कवचके प्रयोगसे अपूर्व लाभ

'कल्याण' वर्ष ३७ अङ्क १० में किन्ही बहनने इन्द्राक्षी-देवीका यन्त्र-कवच-स्तोत्र छपवाया था। मैं उसका अध्ययन करता आ रहा हूँ और प्रतिदिन पूजामें पाठ करता हूँ। घटना अभी हालकी है। मेरे चचेरे भाई रामगोपालजीकी पत्नी लक्ष्मीदेवीको अचानक दिलका दौरा ता० २४। ४। ६४ को रात्रिके करीब ११ बजे हुआ। उस समय मै सो रहा था। उन्होंने आकर जगाया और कहा—'हमारी स्त्रीकी बोली बन्द हो गयी है। शरीर ऐंठा जा रहा है, चलकर देखो।' मैंने जाकर देखा, वास्तवमें बात सही थी। मैंने उनसे कहा—'आप तुरन्त किसी अच्छे डाक्टरको लाकर दिखलाइये। मामला बहुत नाजुक मालूम हो रहा है।' वे डाक्टरको बुलाने चले गये। मै देवीजीका स्मरण करने लगा। देखते-ही-देखते लक्ष्मीकी आँखें बन्द हो गयीं। मुँहसे फिचकुर बहने लगा तथा शरीर जडवत् काठके समान होकर ठंढा पड़ गया। मैंने यह देखकर उसे मन्त्रोंसे फूकना शुरू किया। इन्द्राक्षी-कवच तथा स्तोत्रका ऐसा चमत्कार हुआ कि एक ही मिनटमें उसने आँखें खोल दी और कुछ मरतबे फूँकनेपर वह उठकर बैठ गयी। यह घटना पाँच मिनटके अन्दर घटित हुई।

इतनेमें रामगोपालजी डाक्टरको लिवाकर आ गये। डाक्टरने देखा और एक सूई लगायी तथा 'यह दौरेकी बीमारी

है, दवासे ठीक हो जायगी'—कहकर वे चले गये। रामगोपालजी डाक्टरके साथ दवा लाने चले गये। उन लोगोंके जानेके बाद फिर पीड़ा शुरू हो गयी। वह छटपटाने लगी और शरीर ऐंठने लगा। इसी बीचमें रामगोपालजी दवा तथा किन्हीं एक झाड़-फूँक करनेवालेको साथ लेकर आये। उन्होंने झाड़-फूंक शुरू की, परंतु पीड़ा बढ़ती ही गयी। शरीर ऐंठता ही रहा। करीब एक घण्टेतक झाड़-फूंक करनेपर भी जब कोई लाभ नहीं हुआ, तब वे हताश होकर बैठ गये।

अब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने फिर देवीजीका ध्यान करके इन्द्राक्षी-कवच-स्तोत्रसे फूँकना शुरू किया। पाँच मिनटके अन्दर ही सारा रोग जाता रहा। वह उठकर बैठ गयी और सब लोगोंसे मजेमें बातें करने लगी। इन्द्राक्षी-कवचका जैसा अपूर्व चमत्कार आज देखनेको मिला, वैसा अपने जीवनमें पहले मैंने कभी नहीं देखा था। इन्द्राक्षी-कवच 'कल्याण'में छपवाकर उन बहिनजीने बड़ा ही उपकार किया है।

—श्रीरामगुलाम केसरवानी, गिरधरका चौराहा, मिरजापुर

—हस्ताक्षर—रामगोपाल, श्रीमती लक्ष्मीदेवी



खूनी-वादी बवासीरकी अनुभूत दवा

खूनो तथा वादी——दोनो प्रकारके बवासीरके नाशका यह अनुभूत प्रयोग है। मैने स्वयं और अन्य बहुत-से लोगोंपर प्रयोग करके इससे लाभ उठाया है। नुस्खा यह है——नारियलकी छाल (जटा) को भस्म करके १) एक तोलेभर पाँच दिनोतक रोज फाँक लें और ऊपरसे गायकी छाछ पाव या आधा सेर रुचिके अनुसार पी लें। जब-तक दवा लें, तबतक तेल, खटाई, गुड़ नहीं खायँ। लाल मिर्च तो बवासीरके रोगीको कभी नहीं खानी चाहिये।

—श्रीमनोहरसिंह मेहता, सोनासेरी, दान्ता मैंरू, उदयपुर (मेवाड़)



सद्व्यवहारका फल

जब मैं बारह वर्षकी थी, तब वे दोनों दो वर्षके होंगे। प
ऐसा अनुमान होता था कि वे मुझसे अधिक आयुके हैं। मैं उनप
आसक्त—न्यौछावर हो चुकी थी। वे मुझे पतनकी ओर ले जायेंगे
मुझे यह ध्यान ही न था। मैं सदा उन्हें अपने साथ रखती थ
स्कूल, घर-बाहर सभी जगह। शयनागारमें भी मैं उनका साथ नहीं
छोड़ती। दो तरफ वे दोनों और बीचमें मैं।

मुझे इसमें बड़ा आनन्द आता! पर मेरा यह आनन्द जब
कभी पिताजीके सामने स्पष्ट हो जाता तो वे ऐसे देखते जैसे सिंह
गायको देखता है; पर मुझे किसीकी बात माननी नहीं थी। मैं न
मानी। अब तो सबके सामने वे दोनों प्रत्यक्ष रूपमें मेरे साथ रहने
लगे। एक क्षणके लिये भी मेरे पास वे न होते तो ऐसा लगता कि
मैं किसी ऐसी अमूल्य वस्तुको खो बैठी हूँ, जिसके बिना मेरा जीवन
बेकार है।

तीन सौ साठ दिन बीते। मैं तेरह वर्षकी हुई और घरसे मेरा हुआ निष्कासन, मैं दूसरे घर गयी। बेटीसे बहू बनी, पत्नी बनी, गृहिणी बनी। स्वतन्त्रताके मुँह-खोल वातावरणसे घूँघटमें आयी और मग्न हो गयी उसी संसारमें, किंतु इतनेपर भी मुझे कोई भय नहीं था। मैं अपने उन दोनों साथियोंको साथ ही लायी और साथ ही रखने लगी। मेरी सेवासे मेरे सास-ससुर सभी प्रसन्न थे, इसलिये वे कुछ बोलते नहीं थे।

मुझे डर था केवल उनका। एक दिन उन कल्याणप्रेमीने कहा—'शान्ति! मेरे साथ रहकर तुम्हें यह शोभा नहीं देता। अतः इन दोनोंको यहाँसे भगा दो।' कभी-कभी मैं हँसकर टाल देती, कभी उत्तर न देती और कभी खीझकर कह देती—'जाइये आप! मैं नहीं छोड़ सकती। ये मेरे बचपनके दोस्त हैं।' मेरी इन बातोंसे उनके हृदयपर चोट लगती होगी, किन्तु वे बिना कुछ कहे सुन लेते।

एक दिन फिर यों ही उन्होंने कहा—'शान्ति! छोड़ दो इन्हें।' उस समय मैं खीझ गयी और बोली—'नहीं छोड़ती, जाओ, जो करना हो सो करो। रोज यही छोड़ दो, छोड़ दो, छोड़ दो की रट लगी रहती है। यों कहती हुई मैं दूसरे कमरेमें चली गयी। वे चुपचाप कुछ क्षण खड़े रहे, फिर हँसकर बाहर चले गये। उस दिनसे मैं नाराज हो गयी। मैंने बोलना बन्द कर दिया, किन्तु वे मौन नहीं रहे। वही प्रेम, वही वर्ताव, होठोंपर वही मुस्कान नाचती रही। छोड़ दो कहनेकी जगह अब वे स्वयं उन दोनोंका पूर्ण प्रबन्ध भी करने लगे। मुझे तो बोलना था नहीं, सो मैं नहीं बोली एक माह। माताजीसे बात छिपी न रह सकी। एक दिन पूछ ही

लिया उनसे—'बेटा ! तेरे पाँव एक महीनेसे घरमें नहीं जमते । क्या बात है ? झगड़ा कर लिया है क्या तुमलोगोंने ?' उत्तरमें उन्होंने कहा—'नहीं माँ, झगड़ा कैसा । मैं एक दूसरे काममें लगा रहता हूँ, इसलिये घरमें कम बैठता हूँ ।' मैं सुनकर चकित हो गयी पर मेरे बर्तावमें कोई अन्तर नहीं पड़ा ।

एक दिन उनके कई मित्र घरपर आये । बात चल पड़ी । एक मित्रने कहा—'भाई ! तुम तो सुपारी-तम्बाकू आभियान चला रहे हो, दूसरोंको रोक रहे हो, पर तुमने कभी अपने घरपर भी दृष्टि डाली है ? मैंने तुम्हारे कहनेसे 'बीड़ी छोड़ दी ।' किसीने कहा—'सिगरेट छोड़ दी,' किसीने कहा—'तम्बाकू छोड़ दी ।' एकने कहा—'मैंने तुम्हारे कहनेसे गाँजातक छोड़ दिया । किन्तु तुम्हारी शान्तिने तो अपने दोनों दुर्व्यसन—सुपारी-तम्बाकूको अपना ही रक्खा है । इसका तो यही अर्थ होता है कि वह तुम्हारी बात नहीं मानती ।'

मै किवाड़की आड़में सब सुन रही थी । उत्तरमें उन्होंने कहा—'ऐसी बात नहीं है, वह तो बड़ी सीधी, शुद्ध बुद्धिकी भोली-भाली प्रेमप्रतिमा है । मुझे न जाने क्या समझकर मेरी इतनी सेवा करती है कि मै उसका वर्णन नहीं कर सकता । इस विषयमें मैंने आजतक उससे कुछ कहा ही नहीं । तुमलोग विश्वास रक्खो । यदि मैं उससे एक बार भी कह दूँ तो अवश्य छोड़ देगी । अवसर आने दो, वह भी कर दिखाऊँगा ।'

पंचायत समाप्त हुई । सब लोग चले गये । किन्तु वे बैठे रहे थे, क्या ? सो कैसे कहूँ, पर उनकी उपर्युक्त वार्तो-

पर मेरा हृदय टूक-टूक हो गया। जिससे मैं बोलती नहीं वह मेरी बडाई करता है; जिससे मैं क्षमा नहीं माँगती, वह मुझसे प्रेम करता है; मेरा जीवन-साथी है; जिसे मै हर क्षण कुछ-न-कुछ कह दिया करती हूँ, वह हँसकर मुझे कितने विशेष आदर तथा प्यारभरे शब्दोंसे सम्बोधित करता है। वह मेरा देवता है। मेरी नैयाका कर्णधार है और मै इतनी दुष्टा हूँ कि उसकी एक बात भी नहीं मान सकती।'

उसी क्षण मैं उनके पैरोंपर गिर पड़ी और बोली—'मुझे क्षमा कर दें। मैं वचन देती हूँ कि आजसे मैं तम्बाकू, सुपारी कभी नहीं खाऊँगी।' जीवनमें यह बड़ा सौभाग्यशाली दिन था, जिस दिन मैं उनकी बातों तथा 'कल्याण'के उपदेशोंपर विश्वास कर इन दुर्व्यसनोंसे मुक्त हुई।

—शान्तिदेवी शर्मा



दयालु देवीमाई

नासिकमें 'देवीमाई' नामका अस्पताल है। इस नामके पीछे कुछ इतिहास है। देवीके पतिकी मृत्यु हो गयी। उसके भाग्यमें इस युवावस्थामें वैधव्यका आघात लगना लिखा था। उसके ससुरालमें उसके ननदोई थे, वे भी तत्काळ जाते रहे और ननद बहुत बीमार पड़ गयी। सब कहने लगे—'यह देवी ही सबको खाये जा रही है।' वह पीहर गयी तो उसकी छोटी बहिन बहुत बीमार हो गयी····देवीके प्रति शंका बढ़ने लगी। सभी उसे सर्वभक्षी राक्षसी-बलकी प्रतिनिधिरूप मानने लगे।

ऐसे वातावरणमें कभी तो देवीको अपना जीवन भाररूप लगता। कभी जीवनका अन्त कर डालनेकी उसके मनमें आती। कोई भी उसके प्रति क्षणभरके लिये भी सहानुभूति नहीं दिखाता। —हाँ, उसका एक भाई अवश्य उसका ध्यान रखता।

आखिर इस भाईने उसे नर्सके ट्रेनिंग स्कूलमें भर्ती करा दिया। देवी नर्सकी शिक्षा प्राप्त करके एक छोटे-से प्रसूतिगृहमें नियुक्त हो गयी। इस प्रसूतिगृहकी मुख्य संचालिका एक अंग्रेज महिला थी।

एक बार एक नीची जातिकी बहिन प्रसूतिगृहमें भर्ती हुई। रातको उसके पेटमें दर्द शुरू हुआ। उसे पाखानेमें ले जानेकी स्थिति नहीं थी, पर अस्पतालमें पाखानेका टब (कमोड) केवल अंग्रेजों और यूरोपियनोंके लिये ही था। देवीने इस नियमका भंग किया और कमोडको वह उस बहिनके पास ले गयी।

दूसरे दिन इस बातका पता लगनेपर उस अंग्रेज-महिलाका पारा चढ़ गया। उसने देवीके साथ बहुत कड़ाईसे बातें कीं। इतनेपर भी देवीने सहज स्वरमें इतना ही कहा—'ऊँच-नीचका भेद तो हमलोगोंने बना लिया है! धर्मकी दृष्टिसे सभी एक कुटुम्बकी संतान हैं।'

अंग्रेज-महिलाने देवीको प्रसूतिगृहसे निकाल दिया। पर अब देवीका जीवनकार्य सँभल चुका था। अब उसे जीवनमें कहीं निराशा या असहायपन नहीं भासता था। देवीने अंग्रेज महिलाका अस्पताल छोड़नेके बाद बचाये हुए वेतनके पैसोंसे तथा भाईकी मददसे पाँच-छः खाटवाले कमरेका अस्पताल शुरू किया। इस कमरेकी व्यवस्था उसके भाईने कर दी थी।

अब देवी केवल रोगियोंकी चारपाईके पास रात-दिन रहकर खड़े पैरों सेवा करने लगी। अठारह-अठारह, बीस-बीस

घंटे लगातार वह मातृहृदयकी सजीव ऊर्मियोंके साथ रोगियोंका दुःख हल्का किया करती और निःस्वार्थ देख-भाल करती। अन्तमें उसके जीवन-कार्यकी सुगन्ध अपने-आप ही सब ओर फैलने लगी। अखबारोंमें विज्ञापन और फोटो छापनेकी उसे जरूरत नहीं पड़ी। उसकी इस उत्कृष्ट सेवा-भावनाके कारण अब वह केवल 'देवी' न रहकर लोगोंकी 'देवीमाई' बन गयी।

देवीमाईकी एक कोठरीके नन्हें-से अस्पतालको चारों ओरसे सहायता मिलने लगी। धीरे-धीरे वह एक भव्य बृहत् अस्पतालके रूपमें परिणत हो गया। इस अस्पतालकी इतनी ख्याति हुई कि उपर्युक्त अंग्रेज-महिला, जो एक समय देवीमाईकी स्वामिनी थी, उसके इस अस्पतालको देखने आयी।

बाहर मिलनेवालोंकी कतार लगी थी, उसीमें वह अँग्रेज-महिला भी खड़ी थी। इस नये अस्पतालका कार्य देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हो रही थी, इसलिये वह इस अस्पतालकी संचालिकाको धन्यवाद देने आयी थी। उसे यह पता नहीं था कि एक समय जिस बहिनको उसने अपमान करके अपने अस्पतालसे निकाल दिया था; वही इस अस्पतालकी मुख्य संचालिका देवीमाई है।

इतनेमें देवीमाई बाहरसे आयी और ज्यों ही वह अंदर जानेको पैर उठा रही थी कि उसकी नजर उस अंग्रेज महिलापर पड़ी। देवीमाईको याद आयी कि इसी बहिन

पास मैंने पहले नर्सका काम किया था। देवीमाई अंग्रेज-महिलाको अंदर केबिनमें ले गयी। अंग्रेज-महिला बोलनेमें रुक-सी रही थी, आख़िर वह बोली—

'देवी! तुझे धन्य है। तेरे कामको आज मैंने अस्पतालके हर हिस्सेमें घूम-घूमकर देखा है। तूँने एक महान् सफलता प्राप्त की है। मानवजातिके दुःखोंको दूर करनेकी तेरी यह रात-दिनकी सतत चिन्ता तेरे सामने सबके मस्तक झुका देती है। तू मुझे अपनी भूलका प्रायश्चित्त करने देगी?'

तदनन्तर अंग्रेज-महिलाने अपने पर्समेंसे डायरी निकालकर कुछ लिखकर दिया और कहा—'इसको स्वीकार करके मेरी भूलको सुधारनेका अवसर मुझे दे, यही मेरी प्रार्थना है।'

देवीमाईने कागज खोलकर देखा—उसमें उस अंग्रेज-महिलाने लिखा था—'मेरी सारी सम्पत्ति मैं इस अस्पतालको भेंट कर रही हूँ—देवीमाईके भव्य जीवनकार्यके प्रति एक तुच्छ नम्र अञ्जलिके रूपमें।' (अखण्ड आनन्द)

—लल्लूभाई बकोरभाई पटेल



ईमानदारी

एक बार इन्हें अपने दरवाजेके समीप संध्याके समय एक बंडल मिला मानो कोई अदृश्य शक्ति इनकी परीक्षा ले रही हो। इन्होंने घरके भीतर आकर उसे खोला तो देखा उसमें पूरे पंद्रह सौके नोट हैं जो सभी भीगे हैं। उनको स्टोपके सहारे सुखाया, समेटा, फिर तकियेके नीचे रखकर सो गये। पर बगलके मकानमें हल्ला-गुल्ला सुनकर तुरंत जग गये। बगलके मकानमें एक ठेकेदार साहब रहते थे, जातिके मुसलमान थे. जोर-जोरकी आवाज सुनकर ये उधर गये। ऐसा लगा कि अंदर मार-पीट-सी हो रही है। अड़ोस-पड़ोसके कई और लोग भी जुट गये। किंवाड़ खोलकर किसी प्रकार भीतर गये। देखा, बाप-बेटे बेतरह उलझ रहे हैं। एक दूसरेपर डेढ़ हजार रुपये चुरानेका आरोप लगा रहे हैं। बात बहुत बढ़ गयी है। इन्होंने सबकी उपस्थितिमें ही उनसे कहा, 'आपलोग एक दूसरेपर संदेह करके

व्यर्थ आपसमें क्यों लड़ रहे हैं ? आपलोगोंमेंसे किसीने रुपये नहीं चुराये हैं। रुपये तो हमारे घरमें हैं, मैं अभी लाकर देता हूँ। डेढ़ हजार रुपयेका एक बंडल कुछ देर पहले मुझे आपके मकानके पास ही बाहर पड़ा मिला था।' इन्होंने घर जाकर तुरंत रुपये लाकर दे दिये। सब लोग आश्चर्यचकित रह गये और एक स्वरसे इनकी मानवताकी सराहना करने लगे। ठेकेदार साहेबका गृहकलह ही नहीं समाप्त हो गया, पिता-पुत्र पश्चात्ताप करने लगे और उनका एक दूसरेपर अपूर्व विश्वास जाग्रत् हो गया। उन लोगोंने आनन्दातिरेकमें रुपये लेनेसे इनकार किया और कहा कि इनसे सबको भोजन कराया जाय। वे किसी प्रकार न माने, सब मुहल्लेवालोंने पाँच सौ रुपये और मिलाकर सब लोगोंको दावत दी। सभी इन सज्जनकी ईमानदारीपर हर्ष प्रकट कर रहे थे। (नाम प्रकट करनेकी अनुमति नहीं है।)

—डॉ० रामेश्वरप्रसाद 'विशारद'



आश्चर्य घटना

घटना अभी एक वर्षके भीतरकी ही है। मेरे पड़ोसी वाराणसीमें रेलवे कर्मचारी हैं। उनके पुत्र रामभरोस वर्मा सिलाई-मशीन रखकर वाराणसीमें ही रहते हैं। दोनों बाप-बेटेके निवासस्थानमें चार फर्लांगका अन्तर है। दोनों रेलवे लाइनके दोनो ओर रहते हैं। परंतु रामभरोस दोनों समय अपने पिताके क्वार्टरपर भोजन करने जाते है। एक दिनकी बात है कि रामभरोसके पिताने दोपहरको राम-भरोससे कहा कि 'शामको हमें दस रुपये जरूर मिलने चाहिये, नहीं तो बड़ा हर्ज होगा।' रामभरोस अपने किसी ग्राहकसे अपनी मजदूरीके दस रुपये लेकर शामको भोजन करने अपने पिताके क्वार्टर जा रहे थे। वाराणसी स्टेशनपर पुलके द्वारा लाइन लाँघकर प्लेटफार्मपर पहुँचे तो देखा कि एक युवतीको कुछ रेलवे कर्मचारी बहुत परेशान कर रहे हैं। रामभरोस भी वहाँ खड़े हो गये। पता लगा कि उस युवतीके पास टिकट नहीं है और वह अपने साथियोंसे अलग होकर भूलसे वाराणसी स्टेशनपर पहुँच गयी है। रेलवे बाबूने उस लड़कीको गाली दी। रामभरोस इसे सहन न कर सके। उन्होंने कहा—'आपलोग गाली क्यों देते हैं?' इतना सुनते ही गाली देनेवाले उस रेलवे बाबूने बिगड़कर कहा—'यह बिना टिकटके उतरी है। आप ही चार्ज दे दीजिये। आठ रुपये कुछ पैसे होते हैं। भगवत्कृपासे रामभरोसको आवेश आ गया और वही दस रुपयेका नोट, जो अपने पिताको देने ले जा रहे थे, रामभरोसने पेश कर दिया और उनसे रसीद लेकर लड़कीको जहाँ जाना था, वहाँका टिकट खरीदकर दे दिया।

इससे रामभरोसको बड़ा आत्मसन्तोष हुआ, पर वे सोचने लगे कि यदि मै भोजन करने घर जाऊँगा तो पिताजी पैसेके लिये नाराज होंगे। यों सोचते हुए भूखसे व्याकुल वे प्लेट-फार्मपर रेलकी पटरीकी ओर अपनी नजर लगाये हुए टहल रहे थे कि इनको सहसा नीचे एक चमकीला कागज (सिगरेटकी पन्नी), जिसपर किसीने पान खाकर थूक दिया था, दिखायी दिया। इन्होंने क्या वस्तु है यह जाननेके लिये उसे उठा लिया। इनके आश्चर्यका ठिकाना ही नहा, उस चमकीले कागजके नीचे एक कागजमें सुरक्षित दस रुपयेका एक नोट रक्खा था। इन्होंने उसे उठा लिया और सहसा मुखसे निकला कि बाबा विश्वनाथकी नगरीमें मैं बिना भोजन किये कैसे सोता। मन-ही-मन भगवान्‌का गुण गाते हुए वे अपने पिताके क्वार्टरपर गये और अपने पिताजीको रुपये दे दिये। तदनन्तर भोजन करके अपनी दूकानपर लौट आये।

उस युवतीने रामभरोससे इनका पता पूछकर नोट कर लिया था। घटनाके तीसरे दिन सूटबूटसे सज्जित एक सज्जन रामभरोस टेलर मास्टरको पूछते हुए उनकी दूकानपर आये और इनको परसोंकी बीती बातोंकी याद दिलाकर दस रुपये देते हुए बोले कि 'वह मेरी बहिन थी।' रामभरोसने कहा कि 'भाई साहेब! मुझे तो उसी दिन रुपये मिल गये।' फिर सारी बाते बतायीं। तब आगन्तुकने कहा कि 'यह तो आपको भगवान्‌ने पुरस्काररूपमें दिया है, और वह नमस्ते करके चले गये। रामभरोसने घर आनेपर मुझको ये सब बाते बतलायीं। —श्रीसाहबशरणलाल शर्मा



मार्ग-भूली बहिनको सचमुच मानो भगवान् मिल गये

एक बार एक अधेड़ उम्रकी बहिन मेरे यहाँ आयी, मेरे सामने खड़ी होकर बोली—'भाई! आपके पड़ोसी नानालाल भाईने मुझे आपके पास कुछ सलाह पूछनेके लिये भेजा है।'

'अच्छी बात है, आइये, बैठिये।' मेरे यों कहनेपर वह मेरे सामने बिछी हुई शतरंजीपर बैठ गयी और बोली—'भाई! मैं एक दुखियारी विधवा हूँ! एक समय मैं सुखी थी, सगे-सम्बन्धी थे, पैसे थे, घर था; पर आज इनमेंसे कुछ भी नहीं है। मैं जिनको अपना कह सकती हूँ, वे मेरे सामने भी नहीं देखते। किंतु भाई! एक प्रकारसे कहूँ तो इसमें दोष मेरा है, मैं अपने ही दोषसे दुखी हुई हूँ!'

यों कहते-कहते उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। मैंने धीरज देनी चाही, पर दसेक मिनटतक वह सुबक-सुबककर रोती रही, फिर शान्त हुई। तदनन्तर उसने अपनी सारी बातें पेट खोलकर मुझे सुनायीं।

उसकी बातोंका सार यह था कि वह एक सुखी पिताकी पुत्री और सुखी पतिकी पत्नी थी। पतिके घरमें आनन्दसे दिन बिता रही थी। दुर्भाग्यसे यौवनमें विधवा हो गयी।

सन्तान थी नहीं। घर तथा पैसा था। वह कुछ स्वार्थी सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा फुसलायी जाकर लूटी जाने लगी। दूसरी ओर वह पतिके स्वार्थी मित्रोंके फन्देमें पड़ी। थोड़ेमें कहें तो वह बहिन अपने यौवन, घर, धन तथा पीहर-ससुरालके स्वजनोंकी ममता—सबसे हाथ धो बैठी। उम्र अधेड़ हुई और शेष जीवनमें कठिनाइयाँ दिखायी दीं, तब उसके मनमें भविष्यकी चिन्ता जाग्रत् हुई। उसके पास सात-आठ हजार रुपये थे। इन रुपयोंसे वह सुखपूर्वक कैसे अपना जीवन-निर्वाह कर सकती है, यही सलाह उसे पूछनी थी।

मैंने कहा—'आप मुझसे सलाह पूछ रही हैं, इस प्रकार दूसरे किसीकी सलाह भी तो आपने ली होगी। अपने सगे-सम्बन्धियोंसे-हितैषियोंसे भी तो पूछा होगा?'

'मैं बहुत जगह ठगायी जा चुकी हूँ। इससे किसीपर भी मेरा विश्वास नहीं रहा। भाई! कुछ सगे-सम्बन्धी तो मेरी ओर देखते ही नहीं। एकने मुझे सलाह दी कि 'तू हमारी फर्ममें रुपये जमा करा दे तो हम तुम्हें अच्छा ब्याज दे दिया करेंगे, जिससे तुम्हें रोटी हो जायगी।' एक परिचित सज्जनने कहा—'तेरे पैसोंमेंसे मेरे मकानपर एक घर बनवा ले, तू उसमें रहा कर और बचे पैसोंसे कोरकसर करके जीवन चलाया कर।' इस प्रकार सभीके हाथका ग्रास उनके अपने मुँहकी तरफ हो जाता है। अतः उनपर मुझे कैसे विश्वास हो?'

बहिन सचमुच बड़े असमंजसमें पड़ी थी, यह मैंने देखा। उसने अपनी इज्जत खो दी थी। इससे कोई भला आदमी उसके साथ बात भी नहीं करता, फिर उसके काममें तो वह

सहयोग देता ही कैसे ! ऐसी विकट स्थितिमें पड़ जानेके कारण ही वह मेरे-जैसे अनजान आदमीके सामने पेट खोलकर बातें करने और सलाह लेने आयी थी।

उसे सच्चे रास्तेपर चलानेके लिये मुझसे जो कुछ बन सके करना चाहिये—यह मुझे अपना कर्तव्य प्रतीत हुआ। वह शहरसे दूर एक मुहल्लेमें एक छोटी-सी कोठरी किरायेपर लेकर उसमें रहती थी। मैंने तुरंत तो उसे इतनी ही सलाह दी कि 'तुम्हारे पास जो रुपये हैं, कोर-कसरके साथ खर्च चलानेके लिये उनमेंसे थोड़े-से रखकर बाकी सब रुपये बैंकमें बँधी मुद्दत (Fixed deposit)के रूपमें करा दो। इसके बाद सोचकर कोई अच्छा रास्ता बताऊँगा। नगद रुपयोंको साथ लिये घूमोगी तो फिर कहीं फँस जाओगी और रहा-सहा पैसा भी खो दोगी।'

मैंने साथ जाकर उसके रुपये बैंकमें जमा करवा दिये। फिर सोचनेपर मुझे एक मार्ग दिखायी दिया। एक छोटी-सी हाउसिंग सोसाइटी बन रही थी, उसमें जमीनके साथ दस हजार रुपये अन्दाज लगानेपर मकान बनाया जा सकता था। उस समय जमीनमें तथा मकान बनवानेमें इतनी महँगी नहीं थी और उसपर कुछ लोन (उधार) भी मिल सकता था। मैंने साथ रहकर बहिनका यह काम करवा दिया। अब वह मकानकी मालकिन बन गयी। एक हिस्सेमें वह रहने लगी और शेष हिस्सोंको किरायेपर उठाकर मासिक ८०-८५ रुपये कमाने लगी। इन रुपयोंसे लोनका ब्याज तथा किस्त चुकानेके बाद जो कुछ बचता, उससे उसका पोषण-खर्च निकलने लगा।

पाँच-सात वर्षोंमें वह बहिन ऋणसे मुक्त हो गयी और उसके मनमें उत्साह आया । अब सगे-सम्बन्धियो तथा परिचितोंके बीच पूर्ववत् रहनेका उसका मन हुआ । सोसायटीमें अनजान किरायेदारों तथा पड़ोसियोंके साथ रहना उसे अखरता था । उसने मुझसे यह बात कही और इसीके साथ, शहरमें एक छोटा मकान पन्द्रह-सोलह हजारमें मिल रहा है, यह सूचना दी । मैंने इसका पता लगाया और उधर सोसायटीवाले मकानका ग्राहक भी खोज निकाला । इस मकानकी जितनी कीमत मिली, उतनेमें ही शहरवाला मकान मिल गया । अब वह उमंगके साथ शहरवाले मकानमें आकर रहने लगी । यहाँ भी उसे भाड़ेकी आमदनी ठीक-ठीक होने लगी ।

आज वह बहिन साठपर पहुँच गयी है और न्यातजातमें उसकी प्रतिष्ठा पुनः पूर्ववत् होने लगी है । इससे उसको आनन्दका अनुभव होता है । वह कभी-कभी मेरे यहाँ आया करती है और चाय-पानीके बादमें जब उसे सन्तोषकी डकार लेते देखता हूँ, तब मुझे भी सन्तोष हुए बिना नहीं रहता ।

यह वृत्तान्त एक सेवाभावी और व्यवहारकुशल वृद्ध मित्रने मुझे सुनाया । तब मेरे मुँहसे सहज ही उद्गार निकला—इस मार्ग-भूली बहिनको मानो सचमुच आप भगवान् ही मिल गये ।

—चु० व० शाह



आनन्दके आँसू

'हार नहीं मिल रहा है । किसीसे कुछ कहते भी बहुत डर लगता है । अभी तीन ही दिन ससुराल आये हुए हैं, एकदम नयी जगह है । किसी प्रकार भी मन नहीं लग रहा है । रुलाई आ रही है; ससुरालवाले समझते हैं पीहरकी याद आती होगी, इसीसे बहूरानीकी रोनी-सी सूरत हो रही है ।'

सुशीला पहले-पहल गौना करवाकर कलकत्ते आयी थी । पढ़ी-लिखी सयानी समझदार है । गहना-कपड़ा बहुत सामान साथ लायी है । ससुरालमें बड़ा आदर-सत्कार हो रहा है । सब ओर प्रसन्नता छायी है । सभी नयी बहूका लाड़-प्यार करते हैं । कलतक बहू भी खूब हँस-खेल रही थी । कल शामसे ही उसके गलेका हीरेका हार नहीं मिल रहा है । हार बहुत कीमती है, पर सुशीलाको कीमतकी उतनी चिन्ता नहीं है । वह अपने पिताजीकी लाड़िली बेटी है, पिताजी उससे भी अधिक मूल्यका हार नया बनवा देंगे और उसको हार खो जानेके बाबत कुछ कहेंगे भी नहीं, पर यह बात तो पिताजीसे मिलनेपर न होगी । अभी तो वह ससुरालमें है । कलको सासको पता लग जाय, वह पूछेगी—'हार कहाँ है ?' तो वह क्या उत्तर देगी । इसीसे वह बड़ी परेशान है ।

कल दुपहरके बाद वह बहुत-सी समवयस्का स्त्रियोंसे घिरी हुई थी । वे सब बहुत प्यार कर रही थीं । उसके गहने-कपडे देख रही थीं । उसे खिलाती-पिलाती थीं । सुशीला इस आनन्दोल्लासमें भूली थी । शामको उसने देखा तो गलेमें हार नहीं है । तभीसे वह उदास है ।

किसी तरह रात निकली। उसने अपने मानस कष्टकी बात किसीसे नहीं कही। दूसरे दिन प्रात.कालसे ही सुशीलाकी उदासी और बढ़ गयी। मानसिक वेदनाके प्रभावसे उसके सिरमें भयानक दर्द हो गया। इधर आनन्दोत्सवमें लोग मस्त थे, उधर वह अन्दर जाकर सिर पकड़े बिछौनेपर उलटी पड गयी। बड़ा भय था, अभी बात खुल जायगी तो मुझे लोग क्या कहेंगे।

इसके कुछ ही देर बाद 'सागरमल ब्राह्मणकी पत्नी' नामसे ख्यात एक ब्राह्मणी आयी। वह घरमें बराबर आया करती थी। सबके साथ उसका सद्भाव था। बहुत गरीब थी, पर थी बड़ी ही नेक और हँसमुख। वह सीधी नयी बहूके कमरेमें चली गयी। बहू तो सिर पकड़े पड़ी थी। ब्राह्मणीने उससे पूछा तो वह इतना ही कह सकी कि 'सिरमें बड़ी पीड़ा है।' ब्राह्मणीने अपनी अँगियामेंसे एक हार निकालकर बहूसे कहा—'बहू! तेरा सिर तो दुखता है, पर मैं कामसे आयी हूँ। कल जब तूने नहानेके समय शामको कपड़े-गहने उतारकर रक्खे थे, उस समय तेरा हार तो बाहर नहीं रह गया था न? सीढ़ियोंमें एक हार कूड़ेके साथ पड़ा था। मैं जब जा रही थी तो मैंने देखा और उठा लिया। कल तेरे गलेमें मैंने ऐसा हार देखा था। अतः मैं उसी समय यहाँ आ रही थी। पर घरसे लड़की बुलाने आ गयी। उसके पिताजीको ज्वर हो गया था, इससे मैं चली गयी ××'

एक ही श्वासमें ब्राह्मणी इतनी बात कह गयी। हारका नाम सुनते ही अकस्मात् उठ बैठी! उ दर्द जाता रहा और ब्राह्मणीकी बात पूरी

वह बोल उठी—'बाईजी ! कहाँ है वह हार ?' ब्राह्मणीने हार उसके हाथपर रख दिया । अब तो सुशीलाके आनन्दका पार नहीं रहा । उसके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु आ गये । घरमें हार खोनेकी बातका सुशीलाके सिवा किसीको भी अबतक पता ही नहीं था। इसी बीच ब्राह्मणीने हार लाकर सुशीलाको दे दिया । सुशीला इसके इनाममें उसे क्या दे ? वह पैर पकड़कर रोने लगी। कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये उसके पास शब्द नहीं थे। कुछ समय बाद आश्वस्त होनेपर सुशीलाने अपनी हालत सुनायी और पाँच हजारके नोट लाकर ब्राह्मणीके चरणोंपर रख दिये। ब्राह्मणीने बड़े आदर-स्नेहसे नोट वापस करते हुए कहा—'मुझे तो पता भी नहीं था कि तेरा हार गिर गया है । सब लोग आनन्दोल्लासमें थे। तुझे भी पता नहीं था। हार कहीं नीचे गिर गया होगा और कूड़ेके साथ नौकरने उसे गिरा दिया। बड़ा अच्छा हुआ, भगवान्‌ने कृपा की जो मैंने देख लिया। अब तेरी खुशी देखकर ही मैं तो निहाल हो गयी । मुझे भारी इनाम मिल गया । फिर इसमें इनामका काम ही क्या है ? दूसरेकी चीजपर मन चलाना बेईमानी है और दण्ड पानेका काम है। दूसरेकी चीज उसको दे देना तो सहज कर्तव्य है। फिर इसमें तो तुझको इतनी प्रसन्न देखनेका बड़ा पुरस्कार मुझे मिल गया है ।' सुशीला गद्‌गद हो गयी । ब्राह्मणी भी आनन्दाश्रु बहाने लगी !

—गिरधारीलाल

कर्मवीर जोला

एमील जोला (१८४०–१९०२) फ्रांसके प्रथम श्रेणीके उपन्यासकारोमें माने जाते हैं। उनका प्रारम्भिक जीवन बड़ी दरिद्रावस्थामें कटा। 'ला एसोमा' नामक उनके उपन्यासके छपते ही उनपर चारो ओरसे धन और यशकी वर्षा होने लगी और उनकी गणना फ्रांसके प्रमुख नागरिकोंमें होने लगी, परंतु जोलाको समारोह एवं सार्वजनिक जीवनमें कोई रुचि नहीं थी। वे एकान्तमें बैठकर साधना करनेवाले साहित्यसेवी थे। एकबार ऐसा हुआ कि उनकी कुम्भकर्णी निद्रा भंग हुई और उन्हें खुलकर सार्वजनिक जीवनमें भाग लेना पड़ा।

ऐसा हुआ कि १८९४में फ्रांसके कुछ गोपनीय सैनिक तथा उसके प्रधान शत्रु जर्मनीके हाथ लग गये। सन्देह ड्रेफस नामक एक तोपखानेके यहूदी कप्तानपर हुआ। ड्रेफसका कोर्टमार्शल हुआ और उन्हे आजीवन कालेपानीका दण्ड मिला। फ्रांस उन दिनो अपने कालेपानीके दण्डितोको डेविलके द्वीपमें भेजा करता था, जहाँकी भयानक गरमी सहन न कर सकनेके कारण बन्दी कुछ वर्षोंमें ही तड़फ-तड़फकर मर जाते थे।

फ्रांसके कुछ साहित्यकोंका विश्वास था कि ड्रेफस निर्दोष है, परन्तु म्याऊँका ठौर कौन पकड़े। राज्य, अधिकारी और जनता तीनो ही बुरी प्रकारसे उत्तेजित थे। जिस समय ड्रेफसका कोर्टमार्शल हो रहा था, उस समय जनता अदालतके बाहर चीख-चीखकर चिल्ला रही थी, 'देशद्रोहीको प्राणदण्ड', 'यह यहूदी है', 'यहूदी विश्वास-घाती होते हैं' इत्यादि-इत्यादि। ऐसे विकट समयमें जोला कमर कसकर न्यायकी रक्षाके लिये कूद पड़े। उनके आन्दोलनसे प्रभावित होकर एक उच्च सैनिक अधिकारी मेजर पिकार्ट चुपचाप गुप्तरूपसे मामलेकी छान-बीन करने लगे और इस निष्कर्षपर पहुँचे कि ड्रेफस निर्दोष है। असली अपराधी मेजर एस्टरेजी नामका एक उच्च अधिकारी है। फलतः एस्टरेजीका कोर्टमार्शल हुआ, परन्तु धन एवं सत्ताके बलपर वह निर्दोष छोड़ दिया गया और फ्रांसीसी जनताने कचहरीमें ही गगनभेदी नारे लगाये, 'एस्टरेजी जिन्दाबाद,' 'फ्रांस अमर है,' 'यहूदियोंका नाश हो,' 'देशद्रोहियोंका मुँह काला'।

जोलाने सुना तो तड़पकर रह गये। दो दिन बाद ही १३ जनवरी सन् १८९८को पेरिससे निकलनेवाले 'ला आरोरे' नामक समाचार-पत्रमें उनका 'सम्पादकके नाम पत्र-स्तम्भ'में एक पत्र छपा, जो फ्रेंच-साहित्यमें एक अमर स्थान रखता है। जिसने भी उस पत्रको पढ़ा, तड़प उठा। फलतः जोलापर मानहानिका अभियोग चला। वे दण्डित हुए; परन्तु अपीलमें छूट गये। छूटते ही दूसरा अभियोग चला और लक्षण ऐसे थे कि अबकी बार जोलाको कठोर दण्ड मिलेगा और अपीलमें भी वे नहीं छूट सकेंगे। फलतः मित्रोंके सुझावके

अनुसार वे फ्रांस छोड़कर भाग गये और वर्षसे भी ऊपर लगभग इंग्लैंडमें ठोकरें खाते फिरते रहे। फ्रांसकी सरकारने उनका नाम सम्मानित व्यक्तियोंकी सूचीसे काट दिया; परंतु जोला विचलित नहीं हुए। वे परदेशसे बराबर आन्दोलन चलाते रहे। अन्ततः फ्रांस-सरकारको झुकना पड़ा। जोलाके विरुद्ध अभियोग वापस लिये गये और वे ४ जून १८९९को फिर अपनी जन्मभूमिको लौटे। एक दूसरा कोर्टमार्शल बैठा, जिसने ड्रेफसको बंदी-गृहसे मुक्त किया। उन्हें न केवल सेनामें अपना पुराना पद फिर मिला, बल्कि उनकी पदोन्नति भी की गयी। एस्टरेजी दण्डित किया गया और जिन अधिकारियोंने ड्रेफसके विरुद्ध जाल रचा था, वे सब अपने पदसे पृथक् किये गये।

इस कठोर परिणामके कारण जोलाकी मृत्यु २९ सितम्बर सन् १९०२को हो गयी।

—श्रीराजेन्द्रप्रसाद जैन, तिस्सा



अशिक्षित; किन्तु सुसंस्कृत

ग्रीष्मकी जलती दोपहरीमें धूलिका बवंडर उड़ाती एस० टी० बस मानो दौड़कर थक गयी हो तथा असह्य तापसे संत्रस्त हो गयी हो, इस प्रकार कोड़ियाखाड़ गाँवके समीप नीमकी शीतल छायामें एक भारी फूत्कार छोड़कर ऐसे खड़ी हो गयी, जैसे थकावट उतारने खड़ी हुई हो ।

इस बसके आनेकी प्रतीक्षामें ही खड़ा हो, इस प्रकार एक मनुष्य वहाँ स्वच्छ चमकते प्याले तथा शीतल जलका डोल लिये पहिलेसे खड़ा था । बसके रुकते ही प्यास तथा गरमीसे व्याकुल यात्री पानीकी माँग करने लगे ! वह पानी पिलानेवाला व्यक्ति पहिलेसे ही इस परिस्थितिसे परिचित हो, इस प्रकार शान्त था और जितनी शीघ्रता सम्भव थी, उस शीघ्रता तथा तत्परतासे पानी पिला रहा था। वह इसलिये दौड़-धूप कर रहा था कि बसमें ठंडा पानी पिये बिना कोई छूट न जाय ।

सदाकी रीतिके अनुसार कुछ यात्री पानी पीनेके पश्चात् पानी पिलानेवालेको कुछ सिक्के देने लगे; किन्तु उसने नम्रतापूर्वक कुछ भी लेना अस्वीकार कर दिया । यह देखकर मैं विचारमें पड़ गया । असह्य मँहगाईके इस जमानेमें थोड़ा-सा काम करके बदलेमें बहुत पानेकी आशा करनेवाले लोगोंकी कमी नहीं है । ऐसी अवस्थामें श्रमका बदला मिलता हो,

उसे भी लेना अस्वीकार करनेवाले इस मनुष्यका व्यवहार आश्चर्यजनक था। इसलिये यात्री जो कुछ प्रसन्नतासे दे रहे हैं, उसे ले लेनेकी सलाह मैंने उसे दी।

मुझे उस पानी पिलानेवालेने उत्तर दिया—'साहब! मै, मेरी पत्नी और कन्या—ये केवल तीन सदस्य मेरे परिवारमें हैं। मैं ग्राम-पंचायतमें चपरासीका काम करता हूँ। उससे हम तीनोंका भरण-पोषण हो, इतना मुझे मिल जाता है। अब अधिक पानेका लोभ मुझे किसलिये करना चाहिये?'

इस बातचीतके समयमें मानो मोटरकी थकावट दूर हो गयी हो, इस प्रकार वह दौड़ने लगी। पानी पिलानेवाला भी दोनों हाथ जोड़कर ऐसे खड़ा रहा, जैसे यात्रियोंको विदाई कर रहा हो, उसके सम्बन्धमें मुझे अधिक जाननेकी उत्कण्ठा थी। बसमें बैठे यात्रियोसे पूछनेपर एकने बताया कि पिछले पाँच वर्षोंसे बिना किसी वेतनके केवल आत्मसंतोषके लिये ये भाई पानी पिला रहे है। इनका यह प्याऊ रात-दिन चलता है। दोपहरको बस आनेके समय तो वे अवश्य उपस्थित रहते हैं।

यह सुनकर केवल सेवामें संतोष माननेवाले, सेवाव्रती, अयाचक, अपरिग्रहव्रती, ग्रामीण, अशिक्षित, किन्तु सुसंस्कृत मानवकी मैंने मन-ही-मन वन्दना की। (अखण्ड आनन्द)

—मणिभाई आर० सोलंकी



कृपालुकी असीम माया

गत दिसम्बर ६२ की बात है। छुट्टियोंके दिन थे। मैं अपने घरके स्त्री-बच्चोंके साथ विश्वविख्यात 'जोगफाल्स' देखने गया। 'जोगफाल्स' प्रकृतिनिर्मित भू-स्वर्ग है। यहाँ शरावती नदी शरवेग-गामिनी बनकर ९०० (नौ सौ) फुट ऊँचाईके एक पहाड़से नीचे गिरती है। प्रकृति माताकी इस अनुपम सौन्दर्य-सुधाका पान करनेके लिये देश-विदेशके सैकड़ों यात्री यहाँ आते रहते हैं। हमलोग सागर (जोगफाल्ससे २२ मील दूरपर स्थित एक छोटा-सा आबादीवाला शहर) से निकलकर बसद्वारा दुपहरको जोगफाल्स पहुँचे। वहाँके दर्शनीय स्थानोंको देखते-देखते रात हो गयी। वापस लौटनेके लिये कोई सवारी-वाहन न मिलनेके कारण हमें रातको वहीं ठहरना पड़ा।

क्रिसमसके दिन थे। यात्रियोंसे स्थान भरा था। हमने बहुत देरतक होटलोंमें तथा अतिथि-भवनोंमें जगहकी तलाश की; पर हमें ठहरनेके लिये कहीं जगह नहीं मिली। हम बड़ी परेशानीमें पड़ गये। हमारे साथ सिर्फ बच्चे और औरतें थीं। रातभर निराश्रित बनकर रास्तेपर पड़े रहकर बिताना था।

रातके ११ बज गये। हम सब अत्यन्त निराश-उदास हो गये। ठंढ बहुत लग रही थी। शहरसे अलग फाल्सके नजदीक एक सरकारी विशाल अतिथिशाला थी। जब हम अत्यन्त ही निराश तथा उदास होकर आखिरी आशासे वहाँ

पहुँचे तो दरवाजे सब बन्द थे और बाहर आँगनमें भी बहुत लोग सो रहे थे। हमारे पास बिछौना भी नहीं था। किसी प्रकार रास्तेके किनारे बैठे-बैठे जागरण करनेकी नौवत आ गयी। इधर-उधर भटकने-फिरनेसे हाथ-पैर थक गये। बच्चे रो रहे थे। इस करुणामय स्थितिमें एक ओर बैठकर मै मन लगाकर भगवान्से प्रार्थना करने लगा। 'अनाथो देवरक्षितः'। उस प्रभुकी लीलाको कौन जान सकता है। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि एक सज्जन मोटरसे उतरकर हमारे पास आये और उन्होंने हमारी सारी हालत सुनी। तदनन्तर वे हमलोगोंको अपनी मोटरमें बिठाकर बड़ी उदारतासे अपने भवन ले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने हम सबकी कितने सदाग्रहसे अतिथि-सेवा की, इसे लिखनेमें मैं बिल्कुल असमर्थ हूँ। उन्होंने हमारा स्नेहपूर्ण हृदयसे ऐसा आदर-सत्कार किया, मानो हमलोग उनके कोई खास आदरणीय आत्मीय हों।

पूछनेपर मालूम हुआ कि वे सद्गृहस्थ उस शहरके होटल-सघके मालिक हैं तथा एक बड़ा होटल स्वयं चला रहे हैं।

निश्चय ही भगवान्की अहैतुकी कृपा अति विस्मयकारी है। पर साथ ही उन गृहस्थका यह वर्ताव कितना आदर्श और अनुकरण करनेयोग्य है। हमलोग निराश्रय-से थे, उनसे अपरिचित थे, हमारी उनसे कोई माँग भी नहीं थी; उन्होंने स्वयं आकर हमें आश्रय-दान दिया। उनकी इस सहृदयताका अनुकरण करनेसे बहुतोंको सुखी किया जा सकता है।

एल० टि० गणपति एम० एल० हल्लि (सागर)

जिसका है उसीको मिलना चाहिये

बसो निवासी स्व० भाईलाल भाई व्यासके जीवनके ये दो प्रसंग हैं—

एक समय वे सूरतसे कोई प्रदर्शनी देखने बड़ौदा गये थे। वहाँसे लौटते समय समाचार मिला कि अहमदाबादसे मेल ट्रेन खचाखच भरी आ रही है, इसलिये सूरतकी टिकट नहीं मिलेगी। इसी मेल ट्रेनसे उन्हें सूरत अवश्य लौटना था, अतः जो भी परिणाम हो सकता था। (बिना टिकट ट्रेनमें चलनेका) उसका पूरा विचार करके वे मेलमें बैठ गये। सूरतमें उन्हें किसीने रोका नहीं, वे सुविधापूर्वक घर पहुँच गये। तब क्या उन्होंने टिकटकी चोरी की ? नहीं। उन्होंने दूसरे दिन सबेरे उठकर पहला काम यह किया कि स्टेशन गये और सूरतसे बड़ौदाका टिकट लेकर उसे फाड़कर फेंक दिया।

उनसे जब पूछा गया कि टिकटके जो पैसे बचे थे, उनसे किसी संस्थाकी सहायता करनेके बदले सामान्य दृष्टिसे अटपटा लगनेवाला यह कार्य आपने क्यों किया ? तो उन्होंने बताया—जिसका जो अधिकार है, उसीको मिलना चाहिये ! रेलवेका पैसा मेरेपर ऋण निकला। वह मुझे एक या दूसरी किसी भी रीतिसे उसे लौटाना चाहिये था। मै किसी संस्थाकी सहायता इससे कैसे कर सकता था। ऐसा करनेकी सम्मति मुझे रेलवे अधिकारियोंने तो दी नहीं थी। इस प्रकार एकका

धन उसकी सम्मतिके बिना दूसरेको देकर मैं दुगुने पापका भागी बना होता ।'

× × × ×

एक बार उनके बड़े पुत्रने उनके छोटे पुत्र (अपने छोटे भाई) को कार्ड लिखा । छोटे पुत्रने कार्ड पढ़ा, उसे लगा कि यह पत्र पिताजी भी पढ़ लें तो अच्छा । इसलिये उसने अपने नामको रखकर शेष पता काट दिया और अपने पिताजीका नाम-पता नीचे लिख दिया । जैसे वह अपने पिताके पास हो और कार्ड उसे उस पतेपर मिलनेवाला हो । यह करके कार्ड उसने डाकमें डाल दिया । ऐसा करनेका उसका तात्पर्य यह था कि उसे दूसरा पोस्टकार्ड खर्च न करना पडे और पिताजी सब समाचार जान लें ।

श्रीभाईलाल भाई व्यासजीको जैसे ही यह कार्ड मिला, उन्होंने पता देखा और तुरन्त कार्डके मूल्यका टिकट पोस्ट-आफिससे खरीदकर उन्होंने फाड़ दिया । फिर उन्होने अपने पुत्रको लिखा—'तुमने जो पोस्टकार्ड भेजा, वह मुझे मिल गया । लेकिन अब कभी आगे ऐसा मत करना । ऐसा करना पोस्ट-कार्डकी चोरी कही जाती है । मैंने पोस्टकार्डके मूल्यका टिकट लेकर फाड़ दिया है । मुझे यह कार्ड पढनेके लिये भेजनेकी इच्छा ही थी तो दूसरे कार्डपर उसकी प्रतिलिपि करके अथवा कार्डको लिफाफेमें डालकर तुम भेज सकते थे । इसलिये अब ध्यान रखना फिर ऐसी भूल न हो ।'

(अखण्ड आनन्द) र

—लल्लूभाई ब० पटेल

पितृ-ऋणशोधका आदर्श कार्य

कुछ मास पूर्वकी घटना है। सम्मान्य श्री× × × अग्रवाल × × × स्थानके निवासी हैं। आप ईश्वरके परम (भक्त) एवं माननीय गुणोंसे परिपूर्ण हैं। शरीरसे एकदम अपंग हैं। आपका अधिकतर समय सत्संग एवं गुरुजनोंकी सेवामें ही व्यतीत होता है। आपकी उम्र इक्यावन वर्षोंकी हो चुकी है।

आपके पिता श्री..................के हाथका तैंतालीस वर्ष पहलेका ऋण परिस्थिति प्रतिकूल होनेके कारण शोध नहीं हो सका था। पिताका देहावसान बाईस वर्ष पूर्व हुआ था।

तबसे आप बराबर ईश्वरसे ऋण-मुक्तिके लिये प्रार्थना करते रहते थे। इनकी अन्तकी सच्ची करुणतम पुकार भगवान्‌के हृदय-पटलपर प्रतिध्वनित हो उठी। आर्थिक स्थिति संतोपजनक न होनेपर भी हृदयकी उच्चताने गरिमाका परिचय दिया और एक छोटेसे व्यापारमें कुछ सफलता पाते ही आपने सभी ऋणदाताओंको एकत्र करके हजारों रुपये नकद देकर उनसे ऋण-मुक्ति-पत्र प्राप्त भी किये। ऋण-मुक्ति-पत्र-दाताओंने भूरि-भूरि प्रशंसा करके इनके इस महान् आदर्श कार्यका गौरव बढ़ाया। ऋण पुराना होनेके कारण कुछ लोग तो भूल ही गये थे और कुछ अनभिज्ञ थे। परंतु उनको यथोचित सम्मानके साथ ऋण चुकाकर आप पितृ-ऋणसे मुक्त हुए। धन्य है। आज भी भू-मण्डलपर ऐसे व्यक्ति हैं। ऋण-मुक्तिका सारा कार्य मेरी उपस्थितिमें ही हुआ था।

इन महानुभावने इस विषयको अप्रकाशित ही रखनेकी इच्छा प्रकट की थी। मेरे इस आग्रहपर कि इस प्रकारके आदर्श कार्यको छिपे रहनेपर लोग इसका अनुकरण कैसे कर सकते हैं, आपने संकोचके साथ अनुमति दी।*

—गोपालकृष्ण अग्रवाल



* घटना सर्वथा सत्य है, नाम तथा रुपयोंकी संख्या जान-बूझकर ही नहीं छापी गयी है।

पैतृक धंधेमें लज्जा कैसी ?

आजकल प्राय: प्रत्येक विद्यार्थी कालेजमें अध्ययन करके निकलता है तो वह अपने माता-पिताके काममें मदद करनेमें अप्रतिष्ठा (नामूसी) का अनुभव करता है, उसे इससे अपने मित्रोंमें नीचा दीखनेका डर लगा रहता है। इससे सर्वथा विरुद्ध एक उदाहरण देखनेको मिला। एक दिन संध्याके समय मैं बड़ोदामें सूरसागर तालावके पास पुस्तकें खरीदने गया था। वहाँ सूरसागरके सामने एक हेयर कटिंग सैलून (नाई-घर) में जाकर हजामत बनवाने बैठा। एक प्रौढ़ उम्रके मनुष्यने मेरे बाल काटने शुरू किये। कुछ ही देर बाद एक सूट-बूटधारी युवक वहाँ आया।

उसने कहा—'लाओ बापूजी, इन भाईका बाल मैं बना दूँ।' उसने मेरे बाल बनाने आरम्भ किये। बाल काटते-काटते उसने पूछा—

'आप प्रि-साइन्समें अध्ययन कर रहे हैं न ?'

मैंने सहज ही प्रश्न किया—'आपको कैसे पता लगा ?'

'मैंने आपको 'प्रि' युनिटके मकानके पास कई बार देखा है !'

मैं असमंजसमें पड़ गया। मैंने पूछा—'आप कालेजमें क्या करते है ?'

नम्रतापूर्ण उत्तर मिला, 'जी ! मै इंजिनियरिंगके अन्तिम वर्षमें अध्ययन कर रहा हूँ।'

*

'हैं !' मै तो आश्चर्यचकित हो गया । 'क्या आप इंजिनियरिंगके अन्तिम वर्षमें अध्ययन करते है ?'

मैं विचारोंके जालमें फँस गया और यह पूछ बैठा—'आप इतना ऊँचा अध्ययन करते है, फिर इस हजामत-जैसा काम करनेमें आपको लज्जा नहीं आती ? आपके मित्र क्या आपकी खिल्लगी नही उड़ाते ?'

युवकने स्वस्थता और नम्रतासे उत्तर दिया—'अपने पुश्तैनी धंधेमें लज्जा कैसी ? हमारे वंशपरम्परागत कामको हम कैसे भुला दें ? मैं तो बचपनसे ही पढ़ाईके साथ-साथ यहाँ भी काम करता हूँ ! फिर यहाँतक पहुँचना भी हुआ किसके प्रतापसे ? जिन माता-पिताने परिश्रम करके हमको इतनी ऊँची पढाई करानेका कष्ट सहा, तनतोड़ मेहनत करके हमको इतने ऊँचेपर पहुँचाया, क्या उनका ऋण हमें भूल जाना चाहिये ? क्या उनके काममें सहयोग नहीं देना चाहिये !'

इन प्रश्नोंका मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। बाल बन गये थे, मै पैसे देकर चलने लगा। चलते समय उस सुपुत्रके (युवकको अब मुझे सुपुत्र ही कहना चाहिये) अन्तिम शब्द मेरे कानोंमें गूँज रहे थे। मेरे मनमें उसके प्रति मानकी भावना उदय हो गयी थी। (अखण्ड आनन्द)

—सुभाष एम० पटेल



दो विदेशी महानुभावोंकी आदर्श सुहृदता

घटना २३ फरवरी १९६३ शनिवारकी है।

कालेजसे आकर सो गया और चार बजे सायंकाल उठा। अचानक यह विचार उत्पन्न हुआ कि घर चला जाय। साढ़े चार बजेसे चलना प्रारम्भ किया। मेरा ग्राम भोपालसे १४ मील दूर दक्षिणमें स्थित है। कभी-कभी मैं साइकिलसे ही घर जाया करता हूँ।

एक छोटी-सी बदली उठी और रिमझिम वर्षा होने लगी। पाँच-सात मिनटतक इसी अवस्थामें साइकिल चलाता गया; किंतु फिर अधिक वर्षा होनेके कारण मुझे एक वृक्षकी छायाका सहारा लेना पड़ा। ५। बजेसे ५॥। बजेतक खड़ा रहना पड़ा।

पुनः चलना प्रारम्भ किया, किन्तु अबकी बार यात्रामें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। गाड़ीके दोनों ओरके मडगाटोमें मिट्टी भर जाने और फिर उसको निकालनेका क्रम एक घंटेतक यानी ५॥। बजेसे ६॥। बजेतक चलता रहा और मुश्किलसे मैं दो फर्लांग रास्ता तय कर सका।

बहुत अधिक थक चुका था। बहुत परेशान भी था। घबराकर मैंने साइकिलको बैलगाड़ीके रास्तेसे उठाकर चारागाह-स्थित एक सघन झाड़ीमें पटककर चलनेका विचार किया, किन्तु आन्तरिक भावनाने इस विचारको क्रियात्मक रूप नहीं देने दिया। भाग्यसे उस दिन कोई भी बैलगाड़ी उस

रास्तेमें मेरी ओरकी ही नहीं, बल्कि किसी भी ओरकी नहीं मिली।

अब मेरा वही हाल था जो एक धोबीके कुत्तेका होता है; क्योंकि पिछला गाँव एक मील पीछे रह गया था और आगे आनेवाला गाँव भी दो मील दूर था। उस समय अँधेरा भी अधिक हो गया था। जब व्यक्ति सब ओरसे निराश हो जाता है, तब एकमात्र भगवान्‌की शरण याद आती है। मैं मन-ही-मन भगवानसे प्रार्थना कर रहा था—'हे भगवन्! अब तो किसी भी प्रकार आपको मेरी नैया पार लगानी पड़ेगी, मैं आपकी शरण हूँ।'

अचानक मैंने, कुछ क्षण पश्चात् मोटरकी रोशनी देखी और फिर घरघराहटकी आवाज भी सुनी। पहले ये सब मुझे स्वप्नमात्र लगे, किन्तु तुरंत ही एक जीप बहुत पास आती दिखायी दी। शायद करुणासागरने मेरी करुण पुकार सुन ली थी।

मैं वहीं उस चारागाहमें स्थित झाड़ीके पाससे भगा और मैंने जीप रुकवानेका प्रयास किया। हाथ उठाकर जोरसे चिल्लाया—'रोकना! रोकना! रोकना!' जीपकी घरघराहटमें मेरी आवाज दब गयी, किन्तु ड्राइवरने मुझे भागता देखकर आगे चलकर गाड़ी रोक दी। ड्राइवरने प्रश्न किया—'क्या है? क्या है?'

मैंने सारी घटना सुना दी। बेचारे ड्राइवर महोदय स्वयं गाड़ीसे उतरे और मेरी साइकिल उठाकर जीपमें रखने लगे। साइकिल बहुत भारी हो गयी थी, इसलिये उसका एक भाग

मुझे पकड़ना पड़ा, तब कहीं दूसरा भाग उन्होंने पकड़कर जीपमें रक्खा ।

गाड़ी स्टार्ट हुई । रास्तेंमें आगे और भी बहुत वर्षा हुई थी। ड्राइवरके पास ही उनके एक साथी भी बैठे हुए थे । उन्होंने मेरे बारेमें सारी जानकारी प्राप्त की और मैंने भी उनके बारेमें ।

ये दोनों सज्जन शिकार खेलनेके लिये जा रहे थे । अगला गाँव आया । उस समय रातके ७ बजकर २० मिनट हुए थे। उन्होंने मुझसे पूछा—'अब क्या करोगे !' यह इसलिये पूछा कि मेरा गाँव अब भी यहाँसे आधा मील था । इनको इसी ग्रामके पाससे होकर जाना था । उत्तरमें मैंने कहा—'मै यह गाड़ी किसी भी परिचित व्यक्तिके घर रखकर पैदल घर चला जाऊँगा ।' पुनः प्रश्न हुआ—'तुम डरोगे तो नहीं !' उत्तर दिया—'नहीं सर !'

ड्राइवरके साथी महोदयने ड्राइवरसे कहा—'शिकारको फिर चलेंगे, चलो इनको पहले इनके घर पहुँचा दें, बच्चा है डर लगेगा' आदि ।

मैंने निवेदन किया—'नही सर, अब मै चला जाऊँगा ।' उन्होंने कहा—'आप बैठकर हमको अपने गाँवका रास्ता दिखलावें ।' ७॥ बजे मेरे गाँवमें जीप पहुँची । ड्राइवर महोदयने साइकिल जीपसे नीचे उतारनेमें सहायता प्रदान की ।

ये मुझे छोड़कर जानेके लिये तैयार हो गये । मेरे अत्यधिक आग्रह करनेपर चाय पीना स्वीकार किया । इस बीच पिताजीने इनके प्रति आभार प्रकट किया, किन्तु पिताजी अंग्रेजी नहीं

जानते थे, इसलिये उनकी बातें उन महोदयोंकी समझमें नहीं आयी। हमने भोजनका भी आग्रह किया, किन्तु उन सज्जनोने स्वीकार नहीं किया। रात्रि-विश्रामके लिये कहा, किन्तु वह प्रस्ताव भी उन्होने अस्वीकार कर दिया।

विदा लेते हुए मैंने बहुत शुक्रिया अदा किया, किन्तु उनके शब्द थे—'संकटमें पड़े हुएकी सेवा करना मनुष्य-मात्रका प्रथम कर्तव्य है। हमने अपना कर्तव्य निभाया है, कोई बड़ी बात नहीं की।' इन दोनो सज्जनोंके नाम हैं—(१) डेविड विलियम—जो ड्राइविंग कर रहे थे और (२) हरवर्ट पोपलेण्ड—जो ड्राइवरके साथी थे। दोनों महानुभाव अंग्रेज हैं। भोपाल स्थित एच्० ई० एल्० में सर्विस करते है और इंग्लैडसे आये हुए है।

स्मरण रहे इनके साथ सारी बातें अंग्रेजीमें हुई, क्योंकि ये हिंदी नहीं जानते थे। जब मुझे यह घटना याद आती है, तब वह दृश्य ऑखोंके सामने नाच उठता है और दिल यह कह उठता है—धन्य है ऐसे परोपकारी सज्जनोंको और उनके नेक विचारोंको। हमें इनसे सीखना चाहिये।

—लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव
ग्राम—बदर्रा



चिथड़ेमें छिपे लाल

सिरपर काँच या पीतलके बरतनोंकी टोकरी लिये कुछ फेरीवाले पुरुष और स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ आवाज लगाते घूमा करते हैं और वे पुराने जरी-कामके कपड़े, गोटा-किनारी आदि खरीदा करते हैं अथवा उन्हें लेकर बदलेमें बरतन दिया करते हैं। कई बार ये फेरीवाले धोखा भी दे जाते है।

एक दिन हमारे एक दूरकी सम्बन्धी माताजी गलीमें बालकोंको खिला रही थीं, वहाँ उन्हें ऐसे ही एक फेरीवालेकी आवाज सुनायी दी। माताजीके पास कुछ पुरानी फैसनके कपड़े पड़े थे। घरमें आजकल उन्हें कोई भी पहनता न था। अतः माताजीने सोचा, इन कपड़ोंको देकर बदलेमें कोई बरतन ले लिया जाय। इस उद्देश्यसे उन्होंने फेरीवालेको बुलाया। फेरीवालेके आनेपर माताजी घर गयीं और पिटारीमेंसे एक पुरानी जरी-कामकी साड़ी निकालकर लायीं। फेरीवालेने कुछ देरतक साड़ीको देखा और उसपर हाथ फेरता रहा। फिर माताजीके हाथोंपर रखकर वह चल दिया। माताजीको साड़ीके बदलेमें कुछ बरतन मिलनेकी आशा थी। अतएव उनको आश्चर्य हुआ और उन्होंने फेरी-

वालेसे पूछा—'क्यों भाई ! तू कुछ भी नहीं बोलता, क्या यह साडी एकदम फेंक देने लायक है ?'

फेरीवालेने घूमकर गम्भीर स्वरमें कहा—'माजी ! साड़ी एकदम ठीक है, इसके तार असली सोनेके हैं, इस साड़ीके सहज ही पचीस-तीस रुपये उठने चाहिये। मेरे पास पैसे थे नहीं, इसीसे मैं बिना कुछ कहे यह विचारकर लौट चला था कि अबकी बार पैसे लेकर आऊँगा तब माजीसे साड़ी खरीद लूँगा।'

माताजीको फेरीवालेकी बातपर विश्वास नहीं हुआ। फिर उन्होंने बाजारमें जाँच करवायी तो फेरीवालेकी बात सच निकली। माताजीने शामको जब यह बात बतायी, तब हम लोगोंके मनमें आया कि धरतीने अभीतक अपना सारा नूर नहीं खो दिया है। सम्भव है, फेरीवालोंमें ठगोंकी संख्या अधिक हो तथापि कहीं-कहीं कोने-किनारे अब भी ऐसे चिथड़ेमें छिपे लाल—रत्न मिलने दुर्लभ नहीं हैं।

(अखण्ड आनन्द) —वी० जे० कापडी



बसयात्रा और एक फरिश्ता

कोई रातके सवा दस बजे होंगे। मै अपने डेढ़ वर्षीय पुत्रको गोदमें लिये दिल्ली गेटके बस-स्टापपर खड़ा बसका इंतजार कर रहा था। सर्दीके दिन थे। जनवरी मासकी सरदी! शीतकी लहर अपना रंग अच्छी तरह दिखला रही थी। बसका काफी देर इंतजार कर कुछ लोग तो स्कूटरटैक्सी इत्यादिके द्वारा गन्तव्य स्थानको चल पड़े। अब मै बस-स्टापपर अकेला था। सोच ही रहा था कि बस न मिली तो टैक्सीके पैसे खर्चने पड़ेंगे। उधर गोदमें नन्हा बालक सर्दीसे ठिठुर-ठिठुरकर मुझे टैक्सी कर लेनेकी बार-बार प्रेरणा दे रहा था। मुझे पुत्र और पतिकी बाट जोहती गृहिणीका ख्याल आता तो और भी हृदय घबरा उठता। अन्तमें मैने टैक्सी कर लेनेका निश्चय कर ही लिया, परन्तु सम्भवतः दैवको इस अविस्मरणीय घटनाको मेरे जीवनकी समस्त घटनाओंमें प्रमुखता देनी थी, इसी कारण तत्काल एक बसने सामनेसे आकर मेरे पाँव टैक्सी-स्टैंडकी ओर जानेसे रोक लिये। मैने मनमें ईश्वरको लाख-लाख धन्यवाद दिया और मै बसकी ओर लपका। परन्तु बस ठसाठस भरी थी। इसी समय न जाने कहाँसे एक अन्य व्यक्ति आ टपका और उस तीव्रगतिकने न आव देखा न ताव, मुझे एक ओर करके बसके फुटबोर्डपर पाँव रख दिया। बसमेंसे एक सवारी उतरी थी, अतः कंडक्टरने दोनो सवारियोंको ले जानेसे स्पष्ट इन्कार कर दिया। मै बड़ी उलझनमें था। यह समय परोपकारका नहीं था। रात काफी हो चुकी थी और शीतके जोरसे अंग-अंग काँप रहा था। अन्ततः मैने उन नवागन्तुक महाशयसे

ठान लेनेका निश्चय कर ही लिया। मैं शारीरिक शक्तिके नामपर अपने-आपको सर्वथा हीन ही मानता रहा हूँ, फिर भी उस समय न जाने कैसे मुझमें शक्तिका अभूतपूर्व संचार हो उठा। मैंने बसके फुटबोर्डपर पाँव अड़ा दिये और उस नवागन्तुकको ढकेलकर नीचे कर दिया। परन्तु अपने-आपको इस समय शक्तिमान् समझ लेना मेरी सरासर भूल थी। यह दो ही क्षणोंमें मुझे मालूम हो गया। नवागन्तुकने दो-चार अपशब्द मुझे कहे और कंडक्टरको भी धक्का देता हुआ वह ऊपर पहुँच गया। कंडक्टरको जरा भी दया न आयी और घंटी दे दी। मै दयनीय नेत्रोंसे उस बसको इस प्रकार जाते हुए देख रहा था, मानो डाकू मेरा सर्वस्व लूटकर लिये जा रहे हों और मै निस्सहाय खड़ा उन्हे देख रहा होऊँ।

परन्तु आश्चर्य! बस जरा ही दूर जाकर रुक गयी। मै भागकर उसके पास पहुँचा। देखता क्या हूँ कि उसमेंसे एक वृद्ध महाशय उतर रहे हैं। उन्होंने उतरते हुए कहा 'आपकी गोदमें छोटा-सा बच्चा है और यह आखिरी बस है। मुझे तो यहीं कोई एकाध मील ही जाना है।' मै हतप्रभ-सा उस वृद्धके आश्चर्यजनक निश्चयके सम्बन्धमें सोच ही रहा था कि वे वहाँसे चल दिये और बसके कंडक्टरने भी घंटी दे दी। मेरे पाँव न जाने कैसे बसके फुटबोर्डपर चले गये और न चाहते हुए भी मैं बसपर चढ़ गया।

बसके यात्री उस वृद्धके इस कर्तव्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहे थे। उन्हींमेंसे एकने यह भी बताया कि वृद्ध बीमार थे। बस काफी दूर जा चुकी थी, अन्यथा मै बस रोककर उन महाशयको चढ़ानेका प्रयत्न करता। मुझे रह-रहकर कंडक्टरपर क्रोध आ रहा था, जिसने इस आखिरी

बसके समय भी एकाध व्यक्तिके अधिक हो जानेको भी सहन न किया। मैं उसकी इस कर्तव्यपरायणताको कोस रहा था।

मैं घर पहुँचा। रूखे मनसे भोजन किया। पत्नीने मेरी उदासीनताका कारण पूछा, पर मैंने बहाना कर दिया और जाकर बिस्तरपर सो रहा।

प्रातःकाल हुआ। मुझे पत्नीने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' लाकर दिया। मैंने प्रथम पृष्ठके शीर्षकोंपर नजर दौड़ानेके बाद ज्यों ही अंदरके स्थानीय पृष्ठपर दृष्टि डाली तो एक समाचारपर दृष्टि अटकी-की-अटकी रह गयी। समाचार था 'गत रात हार्डिंग ब्रिजके पास एक वृद्धकी सरदीमें ठिठुरकर मृत्यु हो गयी।' मेरी साँस ऊपर-की-ऊपर और नीचे-की-नीचे रह गयी। मैंने झटपट कपड़े पहने और सम्बन्धित विभागके पास पहुँचा उन वृद्धका पता लगाने। वहाँसे पता लगा कि वृद्धके सम्बन्धी उनका शव अपने घर ले जा चुके हैं। मैंने विभागके कर्मचारियोंसे घरका पता लिया और कुछ ही समय बाद मैं वृद्धकी अर्थीके पास खड़ा आँसू बहा रहा था। यह वही रातवाले परोपकारी महाशय थे, जिन्होंने एक बच्चेपर तरस खाकर अपना जीवन बलिदान कर दिया। मेरी विचारशक्ति अवरुद्ध हो गयी थी। मैं हतप्रभ-सा खड़ा एक कोनेमें अपने आँसू रोकनेका प्रयत्न कर रहा था और जब मुझे पता चला कि उक्त वृद्ध निःसन्तान थे तो उस देवतुल्य मानवके सम्मानमें मेरा मस्तक झुक गया।

यह एक ऐसी घटना है जिसे जीवनमें मैं कभी भुला न सकूँगा।

(धर्मयुग) —श्रीसत्यप्रभाकर

'मकरुजको नजात नहीं'

(ऋणीको मुक्ति नहीं)

बात सत्तर वर्षसे कुछ ही कम समयकी है ।

मेरे पिताजी एक दफ्तरमें नौकरी करते थे । अवकाशके बाद कटड़ा चड़तसिंह (अमृतसर) में एक दोस्तके यहाँ चले जाते थे । वह कोरा रेशम फेरनेवाला एक दूकानदार था । उसकी यह दूकान एक चौबारेमें थी जहाँ उसके और भी कई कारीगर उसके लिये मजदूरीपर रेशम फेरते थे । रेशम फेरनेवालोंको 'नक्काद' कहा जाता था और दूकानदारको 'उस्ताकार' कहा जाता था । उस्ताकारका नाम शायद रामरत्न था ।

रामरत्नकी ऊपरकी मंजिलमें जूआ होता था । मेरे पिताजी खुद जूआ नहीं खेलते थे । वे जुआरियोंमें साहूकारी करते थे । दाँवके समय जुआरी उनसे उधार ले लेते थे । दाँव पड़ता था तो एकके बदले दो दे देते थे । अधिक भी दे देते थे । जो दाँव पड़नेपर भी नहीं देते थे, उनसे हमारे पिताजीको ले लेना आता था । वे प्रायः हर एकसे अपनी पाई-पाई अवश्य वसूल कर लेते थे । उनका नाम लाला राजाराम था । शरीर कोई अधिक बना हुआ नहीं था, पर साहस बड़ा था । खाने-पीनेके शौकीन और दिलके दरिया थे । दो-चार चपरगट्टू अपने साथ रखते थे ।

अमृतसरमें महामारी पड़ी और वे मर गये । मैं और मेरा छोटा भाई रामजस उन दिनों बम्बईमें थे ।

हमारी माँ पहले मर चुकी थी । हमारे पिताजीने दूसरी शादी नहीं की थी । हमें हमारी नानीके सुपुर्द कर दिया था । वे हमें लेकर

अपने बेटेके पास बम्बई गयी हुई थीं।

हम सब अमृतसरमें लौट आये और प्रायः स्थायीरूपसे रहने लगे।

जून-जुलाईका महीना था। सन्-संवत् तो याद नहीं। हम दोनो भाई अभी छोटे-छोटे ही थे। नानीके पास बैठे हुए थे। किसीने दरवाजा खटखटाया। नानीने आवाज दी, 'कौन है?' देखा, कड़कती धूपमें एक बूढ़ा मुसलमान लाठी टेके खड़ा ऊपरकी तरफ देखता हुआ उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसकी कमर झुकी हुई थी। बाल तमाम सफेद थे।

आवाजके बदलेमें आवाज सुनकर उसने कहा—'राजारामके बेटे यहीं रहते हैं?' मेरी नानीने कहा— 'हाँ भाई! क्या बात है?' वह बोला—'उन्हें लेकर जरा नीचे आ जाइये।' पहले तो मेरी नानी डरीं कि कहीं कोई गुंडा-बदमास न हो। राजाराममे बदला लेने न आया हो।

उसने फिर कहा—'बेबेजी! घबरायें नहीं। मै राजारामका दोस्त हूँ, दुश्मन नहीं।'

मेरी नानी हम दोनोंको लेकर नीचे चली गयी। उसने कहा— 'बैठ जाइये। हम तीनों थडेपर बैठ गये। उसने बाँसहरीसे जितने रुपये थे, निकालकर हमारे सामने रख दिये और कहा—'बेबे! यह रुपये तुम उठा लो। पूरे पचीस हैं। इन्हें इन बच्चोंके काममें ले लीजियेगा।'

मेरी नानीने कहा—'बाबा! यह रुपये कैसे हैं?'

वह बोला—'कोई खैरात नहीं, कर्जा है, जो लाला राजारामका देना था।'

'मैं जूएमें टोटेके समय उनसे दस-बीस-पचासतक उधार ले लेता था, जब दाँव पड़ता था तब दे देता था।

इसी तरह एक बार उनसे पचीस रुपये लिये। मै बड़ा उचक्का, बदमाश और खूँखार था। रोज किसी-न-किसीसे टक्कर ले लेना था। एक बार एक टक्करमें मेरे हाथो किसीका खून हो गया। मुझे घटनास्थलपर पकड़नेकी किसीको हिम्मत न पड़ी। मशहूर थानेदार प्रेमसिंह भी मौजूद था। मै भाग गया। बादमें एक मित्रके धोखा देनेसे, विश्वासघात करनेसे मै पकड़ा गया और मुझे आजन्म कालेपानीकी सजा हुई। कालेपानीमें जाकर भी मै गुंडागर्दीसे बाज न आया। वहाँ भी कोई-न-कोई उद्दण्डता कर ही देता। फलतः मुझे माफी एक दिनकी भी न मिली। मै पूरे बीस साल काटकर अभी पिछली साल ही आया हूँ।

'मै बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। मौतके किनारे हूँ। सोचा, राजारामका कर्जा सिरपर उठाये मरनेमे नजात नहीं मिलेगी। मैं मुसलमान हूँ। मेरे कुरआन-शरीफमें लिखा है कि मकरुजको (कर्जदारको) नजात (मुक्ति) नहीं मिलता।

मैंने मजदूरी करके धीरे-धीरे ये पचीस रुपये जमा किये हैं। इन्हें उठा लो और बच्चोंसे कहला दो—'बाबा! मुनाफा माफ किया।' मेरी नानीने रुपये उठाकर हम दोनोंसे ऐसा ही कहला दिया और बूढ़ा सलाम-दुआ करता खुशी-खुशी चला गया।

—गुगँदित्ता खन्ना

आदर्श सहनशीलता

बंगालके प्रसिद्ध विद्वान् श्रीविश्वनाथ शास्त्रीके जीवनसे सम्बन्धित घटना है। एक बार किसी महत्त्वपूर्ण विषयपर दो पक्षोंके विद्वानोंमें शास्त्रार्थ हो रहा था। इनमें एक ओरका नेतृत्व कर रहे थे—श्रीविश्वनाथ शास्त्री।

दोनों ओरसे अपनी-अपनी समझसे अकाट्य युक्तियाँ दी जा रही थीं। दोनों ओरके पण्डित यही समझ रहे थे कि विजय उनकी ही होगी, परन्तु विश्वनाथ शास्त्रीके तर्कोंका खण्डन करना आसान काम नहीं था। आखिर उनके तर्कोंके सामने विपक्षी विद्वान् ठहर नहीं सके। सभी निरुत्तर हो गये। है तो यह दुर्बलता ही, पर होता यही है कि हारनेवाले क्रोधमें भर जाते हैं। अतः जब शास्त्रार्थमें विपक्षियोंको अपनी हार स्पष्ट दिखायी देने लगी, तब उनमेंसे एक पण्डितने अपनी सूँघनेकी तम्बाकूकी डिबिया खोली और सारा तम्बाकू श्रीविश्वनाथजीके सिरपर उड़ेल दी।

श्रीविश्वनाथजीके स्थानपर अन्य कोई होते तो इस प्रकारके बर्तावको न सहकर लड़ बैठते। लड़ाई होने लगनेपर शास्त्रार्थकी बात छूट जाती और कौन पक्ष हारा, कौन जीता

इसके निर्णयका अवसर ही नहीं रह पाता। पर श्रीविश्वनाथजी बड़े धैर्यवान्, गम्भीर तथा सहिष्णु विद्वान् थे। उन्होंने क्रोधका उत्तर क्रोधसे नहीं दिया वरं हँसकर तम्बाकू फेंकनेवालेसे कहा—'पण्डितजी! अवतक तो हम प्रसंगवश अन्य विषयोंपर बातचीत कर रहे थे। अब हमें मूल विषयपर आना चाहिये। आपने तम्बाकू फेंककर व्यर्थ ही अपना नुकसान किया।'

मूल विषयपर वे क्या आते। हार तो चुके थे पहले ही। मौका खोज रहे थे लड़कर हारसे बचनेका। पर श्रीविश्वनाथजीकी सहिष्णुताने वह अवसर ही नहीं आने दिया। वे सब पानी-पानी हो गये। हार तो गये थे प्रतिभासे ही। अब उनकी सहनशीलतासे तो सर्वथा लज्जित और पराजित हो गये। सबने आदरपूर्वक विश्वनाथजीका अभिवादन किया।

—प्रो० श्यामसनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०



मैं घूस नहीं लेता

हमारे मकानके सामने एक वृद्ध रहते थे। वे निवृत्तजीवन बिताने आये थे। जीवनमें उपयोगी हों, ऐसे बहुत-से अनुभवके प्रसंग उनसे सुननेको मिलते थे। उन्हींमेंसे एक प्रसंग उन्हींके शब्दोंमें यहाँ उपस्थित किया जा रहा है—

विश्वयुद्धका समय था। मै कराँचीमें अपने बोहरे हिस्सेदारके साथ ठेकेका काम करता था। सरकारी कंट्राक्टका आठ लाख रुपयेका काम हमने आरम्भ किया था। इसमें बहुत मुनाफेकी सम्भावना नही थी। अवश्य ही अंग्रेज इंजिनियर कुछ रिश्वत लेकर कामको बहुत अच्छा बतला दे तो लाख-डेढ़-लाख रुपये मिलनेकी सम्भावना थी। मैने और मेरे हिस्सेदारने सलाह करके चौदह हजार रुपये अंग्रेज इंजिनियरको देनेका निश्चय किया।

एक दिन हम दोनों फलकी टोकरी और चौदह हजार रुपये लेकर अंग्रेज-इंजिनियरके मकानपर पहुँचे। औपचारिक बातचीतके बाद 'फलकी टोकरी अपनी भेंटके लिये लाये हैं' ऐसा हमलोगोंने कहा। उन्होंने टोकरीमेंसे सिर्फ तीन केले लेकर कहा—'बाकी सारे फल मेरी ओरसे अपने बच्चोंको बाँट दीजियेगा।' इसके बाद उन्होंने हमारे आनेका कारण पूछा। मैं संकोचमे पड़ गया। बगलमें बैठे हुए अपने हिस्सेदारको मैने इशारेसे रुपये देनेकी बात समझायी। उसने चौदह हजारका बंडल टेबलपर रखकर कहा—'यह भी थोड़ी-सी आपकी भेंट है, इसे स्वीकार कीजिये।' इसके बादके दृश्यको मै कभी नहीं भूल सका। गोरा इंजिनियर लाल-पीला हो गया और उसने 'रास्कल' तथा 'नानसन्स' कहकर

हमारी अभ्यर्थना की तथा चौदह हजारके बंडलको टेबलसे फेंक दिया; फिर तुरंत ही हमें बाहर निकल जानेका आदेश दिया।

हमलोग अपराधी थे। घबराये हुए थे। अतएव निराश-मुखसे रुपये लेकर वापस लौटे। कुछ ही दूर गये थे कि इंजिनियरका आदमी—'आपको साहब बुला रहे हैं' कहकर हमें वापस मकानपर ले गया।

इस समयका दृश्य पहलेकी अपेक्षा भी विशेष चढा-बढा था। गोरे इंजिनियरने हमसे माफी माँगी और उसका कारण यह बताया कि 'उसने हमलोगोके साथ अनुचित बर्ताव किया था।' फिर उसने कहा—'मै रिश्वत नहीं लेता, मुझे इतनी ही बात आपलोगोंको जनानी थी। इसकी जगह मै बहुत ही अनुचित बोल गया और आवेशमें सज्जनताको भूल गया।'

इसके बाद हमलोगोके साथ ही उसने चाय पिया। फिर बातचीतके दौरानमें कहा—'भाई! मै रिश्वत नहीं लेता। मुझे सरकार दो हजार रुपये मासिक देती है। मेरे कुटुम्बके लिये यह रकम बहुत ज्यादा है। जाओ, आपलोग ईमानदारीसे सब काम करो, जरूर सफल होओगे।' इसके बाद हमलोगोने विदा ली।

चौदह हजार रुपयेकी बड़ी रकमको ठुकरा देनेवाले गोरे इंजिनियरने हम-जैसे अपराधियोके साथ जिस सौजन्य और उदारताका बर्ताव किया, उसे मै कभी नहीं भूल सकता।

(अखण्ड आनन्द)

—भगवतीप्रसाद



अमोघ ओषधि—'नारायणकवच'

तीन साल पहलेकी बात है। मेरे घुटनेमें अचानक भयानक दर्द होने लगा। मैंने साधारण रोग समझकर ग्रामीण जड़ी-बूटियोंसे प्राथमिक उपचार किया, परंतु दर्द कुछ भी कम नहीं हुआ। वरं उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। यहाँतक कि चलने-फिरनेमें लाठीका सहारा लेनेपर भी कठिनता होने लगी। इसके बाद मैं शहरी डाक्टरोंकी शरणमें गया। बहुत-से डाक्टरोंने रोगकी परीक्षा की। किसीने कालान्तरमें कैन्सरकी सम्भावना बतायी तो किसीने हड्डीमें टी० बी०। किसीने एक डेढ़ साल लगातार इंजेक्शन दिलानेकी सलाह दी तो किसीने पाँव कटवानेतककी राय दी। पचास-साठ इंजेक्शन भी लगातार लगाये गये। परंतु दर्द तो कम हुआ ही नहीं, नये-नये रोगोंने ताण्डव करना शुरू किया। शायद इंजेक्शन

की प्रतिक्रिया थी। कुछ भी हो, अन्ततोगत्वा मैं हताश होकर पड़ा रहने लगा।

एक दिन मेरे गुरु, जिनसे मैने व्याकरण आदि पढ़े थे, आये और उन्होंने कहा कि 'तुम अब इन सब डाक्टरी प्रपञ्चोंको छोड़कर श्रीमद्भागवत षष्ठ स्कन्धस्थ 'नारायणकवच' का पाठ करो। भगवान्‌की कृपासे तुम्हें लाभ होगा।' इस उपदेशके अनुसार मैंने 'नारायणकवच' का पाठ शुरू किया। यथाशक्ति स्नान-संध्याके बाद एक आवृत्ति पाठ मैं प्रतिदिन करने लगा। क्रमशः रोग भी क्षीण होने लगा। तबसे प्रायः छः महीने बीत गये। आज भी मेरा पाठका नियम चल रहा है और मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। दर्द किस स्थानमें था, इसका भी पता नहीं है। इसीसे मैं 'कल्याण'के द्वारा सभी भाइयोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि वे भी आवश्यक होनेपर इस सर्वभय-व्याधिनाशक 'नारायणकवच'का पाठ करें और परम दयालु परमात्मा नारायणके शरण होकर सारी आधि-व्याधिसे मुक्त हों।

—भवनाथ ढकाल



विश्वासका फल

सन् १९२०-२१ की बात है। मैं नापाड ग्रामका निवासी हूँ। नापाड ग्राम आणन्दसे थोड़ी दूरपर बसा हुआ है। उस समय नापाडसे आणन्द जाने-आनेके लिये मोटरबस या किसी दूसरी सवारीकी सुविधा न थी। अच्छी सड़क भी नहीं थी। पगडंडियोंसे अथवा कच्ची सड़कपर बैलगाड़ियोंसे आना-जाना होता था।

एक बार मै किसी कामसे नापाड गया था। वहाँसे प्रातः लगभग ९-१० बजे आणन्द लौटते समय मेरे ही नापाड ग्रामकी बोहरा जातिकी एक विधवा बहिन उरबाई अपने भाईके साथ बैलगाड़ीसे आणन्द आ रही थी। उनका और मेरा साथ हो गया। वे दोनों भाई-बहिन पहुँची हुई उम्रके थे और कमजोर भी।

अचानक मैंने उरबाईसे पूछा—'क्यों उरबाई! आणन्द दवा करवाने जा रही हो!' उरबाईने उत्तर दिया—'नहीं भाई! मैं दवाखाने नहीं जा रही हूँ। मैं तो अपने घरका दस्तावेज अपने इस भाईके नाम करवाने जा रही हूँ। इधर मेरा शरीर ठीक नहीं रहता। देहका क्या भरोसा। मेरे मरनेके बाद मेरे सगे-सम्बन्धी मेरे इस भाईको हैरान न करें, इसलिये पहलेसे पक्का दस्तावेज

करवा देना अच्छा है। कचहरीमें सनाख्त* के लिये मुखियाजीने साथ आनेकी बात कही थी, पर वे न आ सके। दो दिन बाद आनेका वादा किया है; किन्तु ये गाड़ीवान् भाई गाड़ी लेकर आ गये। इनको मना कैसे करती; इनका तो सारा दिन ही बिगड़ जाता। मैंने सोचा—'सनाख्तके लिये खुदा-सरीखे मालिक हैं, तो कोई-न-कोई मिल ही जायँगे। आओ भाई, तुम भी इस गाड़ीमें बैठ जाओ। क्यों आणन्द ही जा रहे हो न?'

मैंने कहा—'हाँ मुझे आणन्द ही जाना है। चलो, अच्छा साथ मिल गया।' यह कहकर मै गाड़ीमें सवार हो गया।

उस समय श्रीभाईलाल भाई व्यास नामक एक सज्जन सब-रजिस्ट्रार थे। आणन्दमें रहनेके कारण उनसे मेरा अच्छा परिचय था। मुझे अचानक ईश्वरीय प्रेरणा हुई कि 'इस बाईकी भगवान्‌पर अडिग श्रद्धा है। कहीं भगवान्‌ने ही तो इसके कार्यमें हाथ बँटानेके लिये मुझे यहाँ नहीं भेजा है? मै ही इस बाईके साथ कचहरीमें जाकर सनाख्त करके दस्तावेज रजिस्टर्ड करवा दूँ तो क्या हर्ज है?'

मनमें इस विचारके आते ही मैंने बाईसे कहा—'तुम सनाख्तकी चिन्ता न करना। सब-रजिस्ट्रारके साथ मेरा परिचय है। मै तुम्हारे साथ चलूँगा और आशा है, भगवान्‌की इच्छासे तुम्हारा काम सरलतासे हो जायेगा।' मेरे इस प्रस्तावको सुनते ही उस बाई और

* किसी भी दस्तावेजकी रजिस्ट्री करवाते समय सब-रजिस्ट्रार दस्तावेज करने और करवानेवाले दोनोंके किसी परिचित व्यक्तिसे, सब-रजिस्ट्रार भी स्वयं पहचानते हो, सनाख्त करवा लेनेपर रजिस्ट्री करते हैं।

उसके भाई आनन्दमें भर गये। उनके चेहरोंपर चिन्तामुक्तिजनित उल्लासकी रेखाएँ उभर आयीं और अचानक उरबाईके मुखसे ये शब्द निकले—'वाह! अल्लाह कितना दयालु है।'

अन्तमें बैलगाड़ी कचहरी पहुँची। दस्तावेज लिखवाकर सब-रजिस्ट्रार महोदयके सामने पेश किया गया। भगवान्की इच्छासे उस दिन दस्तावेज करवानेवाले व्यक्तियोंकी भीड़ भी अधिक न थी। इतनेमें पुकार हुई और हम तीनों सब-रजिस्ट्रारके सामने उपस्थित हुए। मैंने सनाख्त की और दस्तावेज नोट करनेका काम पूरा हो गया।

तदनन्तर सब-रजिस्ट्रारने मुझसे पूछा—'तुम इस बाईके साथ कहाँसे आ गये? तुम्हें तो अपनी सिलाईके कामसे ही फुरसत नहीं मिलती।' मैंने कहा—'मैं गत कल नापाड गया था। लौटते समय मुझे रास्तेमें यह बाई मिली और इसने मुझे गाड़ीमें बैठा लिया और सब बातें कहीं।' मैंने सोचा—'बाईका काम पूरा करनेके बाद ही दूकान जाना उचित होगा।'

इसके पश्चात् सब-रजिस्ट्रार साहेबने वृद्ध भाई-बहिनकी कमजोरीकी ओर देखकर कहा—'लल्लूभाई! तुमने अच्छा काम किया। अब यदि यह बाई आध-पौन घंटा यहाँ और रुक जाय तो इनके दस्तावेजकी नकल भी मैं आज ही अभी करवा दूँ, जिससे नकल लेनेके लिये इन्हें फिर न आना पड़े। खर्च भी बच जायँ और काम भी आज ही निपट जाय। देखो न, दोनों कितने अशक्त हैं।'

उन दिनों अबकी तरह दस्तावेजोंकी फोटो लेनेके लिये

उन्हें पूना नहीं भेजा जाता था। कचहरीके आदमी ही उनकी नकल कर देते थे। मैंने सब-रजिस्ट्रारकी बात उरबाईसे कही और सुनते ही उसे बड़ा आनन्द हुआ! उसने कहा—'मैं ठहर जाऊँगी' और वह खुदाको याद करने लगी।

आधे घंटेमें ही नकल हो गयी। दस्तावेज मिल गया। दस्तावेज लेते समय दोनों भाई-बहिन सब-रजिस्ट्रारको मूक आशीर्वाद दे रहे थे और सलाम कर रहे थे। दयालु सब-रजिस्ट्रार भी उनकी इन भावनाओंका उत्तर मन-ही-मन नमस्कार करके दे रहे हों, ऐसी उनकी सौम्य मुद्रा थी।

बाहर आनेके बाद सनाख्त करनेके बदले उरबाई मुझे दो रुपये देने लगी। मैंने कहा—'बाई! मैं सनाख्त करनेके पैसे नहीं लेता। मनुष्यको मनुष्यका काम करना ही चाहिये। फिर, तुम्हारा यह काम तो खुदाने करवाया है।' यह सुनते ही दोनों भाई-बहिन मुझे अन्तरसे आशीर्वाद देने लगे। सब-रजिस्ट्रारकी दयालुता और बोहरा भाई-बहिनका भगवान्‌के प्रति विश्वास—ये दोनों बातें मुझे आज भी याद आ रही हैं। मेरा अनुमान है कि आधे घंटेमें दस्तावेजकी नकल होकर किसीको मिल जाय—देश-विदेशकी अदालतोंमें ऐसी घटना शायद ही कहीं हुई या होती हो।

—लल्लूभाई पटेल नापाडवाला



महात्माकी समता

आगरासे कुछ दूरीपर जो इटावा है, वहाँसे एक महात्मा प्रतिवर्ष घूमते हुए शिमला पधारा करते हैं। इस बार भी वे काश्मीर श्रीअमरनाथ-यात्रा जानेसे पूर्व आये थे। उन्होंने बतलाया कि कुछ वर्षों पहलेकी बात है, वे घूमते-घूमते वृन्दावन जा निकले। वहाँसे कुछ ही दूर एक प्रसिद्ध महात्माकी जंगलमें एकान्त कुटिया थी। उनका यह नियम था कि वे प्रतिदिन कुछ साधुओंको भोजन करवाकर फिर स्वयं भोजन किया करते। कई वर्षोंसे यह नियम चला आ रहा था। दैववश वे एक बार कुटियासे बाहर कहीं घूमने गये। पीछेसे किसी धूर्तने उनके पीतलके बर्तन चुरा लिये। वे जब लौटे तो उन्हें इसका पता लगा। वे पुलिस-थानामें रिपोर्ट करने गये। वहाँके रपट लिखनेवाले मुन्शीने पूछा—'क्या बात है ?' इन्होंने कहा—'बर्तन चोरी हो गये हैं। आप रपट लिख लें और हो सके तो पता लगा दें।' मुन्शीने कहा कि 'बिना कुछ लिये मैं रपट नहीं लिखूँगा। तुम्हारे पास ५) रु० हों तो दे दो, नहीं तो यहाँसे भाग जाओ।' महात्माने कहा—'भाई ! हमारे पास रुपये देनेको कहाँसे आये ?' मुन्शीने उत्तर दिया कि 'आखिर तुमने बर्तन भी कहींसे माँगकर ही खरीदे होंगे, फिर किसीसे माँग लेना। चलो, हटो यहाँसे ! मुफ्तमें मेरा समय नष्ट न करो। मेरे पास इतना अवकाश नहीं कि मैं तुम्हारी व्यर्थकी बातें सुनता रहूँ।' बेचारे अपना-सा मुँह लेकर वापस लौट आये।

समय व्यतीत होता गया। एक दिन वही मुन्शी किसी

कार्यसे, जहाँ महात्माकी कुटिया थी, उस गाँवमें गया । वहाँ लोगोंसे उन महात्माकी चर्चा सुनी । लोगोंने बतलाया कि 'इन महात्माके नाम हर महीने, पता नहीं कहाँसे मनीआर्डर आते हैं और इनका नियम है कि ये कई साधु-महात्माओंको भोजन करवाकर फिर स्वयं खाते हैं । ये न तो गाँवमें कभी भिक्षा करते हैं और न किसीसे एक कौड़ी कभी लेते हैं ।' यह सब सुनकर मुन्शीके मनमें उत्सुकता उत्पन्न हुई कि 'मै भी ऐसे महात्माके दर्शन करता चलूँ ।' वह कुटियामे गया और उनको देखकर जरा संकोचमें पड़ गया; क्योकि ये वही थे, जिनकी रपट लिखनेसे उसने इन्कार कर दिया था और पाँच रुपये माँगे थे । वह प्रणाम करके बैठ गया और पूछने लगा कि 'महात्माजी ! क्या आपके शिष्यगण हैं, जो आपको मनीआर्डरसे रुपये भेजते हैं ? नहीं तो यह नित्य साधु-भोजन कैसे चलता है ?' महात्माने उत्तर दिया—'भाई ! ईश्वर ही सब कुछ करता है । न तो कोई शिष्य है और न मुझे कोई अन्य व्यक्ति ही मनीआर्डरसे रुपये भेजता है, न मैं मण्डलेश्वर ही हूँ जो मुझे कहींसे किरायेके रुपये आते हो एवं न मेरा किसी मन्दिरपर ही अधिकार है कि जहाँसे चढ़त-चढ़ावा आता हो ।' फिर महात्माजीने कहा—'भाई ! तुम इतनी पूछ-ताछ क्यो कर रहे हो ? अपना कार्य करके वापस जाओ ।' मुन्शीने कहा कि 'मुझे आश्चर्य हो रहा है कि आपका यह अन्नपूर्णाका काम कैसे चल रहा है । कृपा करके मेरे संशयको मिटाइये ।' उसके हठ करनेपर महात्मा कहने लगे—'भाई ! मनीआर्डर मेरे

यहाँसे आते हैं, जो आजकल सेशन जज है। यह सुनते ही मुन्शी घबराकर बोला—'तो महाराज ! आप संन्यासी होनेके पूर्व क्या करते थे ?' महात्माने कहा—'मैं सुपरिंटेंडेंट पुलिस था। मनीआर्डरसे मेरी पेन्शनके रुपये भी आया करते हैं। इसी पूँजीसे महात्माओंकी सेवा होती है। यह सुनते ही मानो उसके पैरके नीचेसे जमीन निकल गयी। वह दण्डवत-प्रणाम करके गद्गद स्वरसे बोला—प्रभो ! मुझे क्षमा करना। मेरेसे बड़ी भूल हुई थी, जब मैंने आपकी रपट लिखनेके लिये पाँच रुपये माँगे थे। मेरे-जैसे व्यक्ति तो, जब आप पदपर थे, आपके बूट पालिस करते होंगे। परंतु आपने यह बात जब रपट लिखाने आये थे, तब क्यों नहीं बतलायी ?' महात्मा कहने लगे, 'भाई ! मैं पुलिस-कप्तान था, तब था। अब तो मैं संन्यासी हूँ, केवल प्रभुका सेवक हूँ। तुमने रपट लिखनेसे इनकार कर दिया और मै चुपचाप वापस आ गया।'

भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतामें संन्यासीके जैसे लक्षण बतलाये हैं, इन महात्मामें ठीक वही दिखायी देते हैं—

(१) जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥
(६।७)

'जिसने मन-इन्द्रिय आदिके संघातरूप इस शरीरको अपने वशमें कर लिया है, जो प्रशान्त है, जिसका अन्तःकरण सदा प्रसन्न रहता है; उस संन्यासीको भली प्रकारसे सर्वत्र

परमात्मा प्राप्त है। वह सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख एवं मान-अपमानमें यानी पूजा और तिरस्कारमें भी (सम हो जाता) है।'

(२) समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
(१२ । १८)

'जो शत्रु-मित्रमें और मानापमानमें, अर्थात् सत्कार और तिरस्कारमें समान रहता है एवं शीत-उष्ण और सुख-दुःखमें भी सम भाववाला है तथा सर्वत्र आसक्तिसे रहित हो चुका है।'

(३) मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥
(१४ । २५)

'जो मान और अपमानमें समान तथा मित्र और शत्रुपक्षके लिये तुल्य है एवं जो सारे आरम्भोंका त्याग करनेवाला है, वह पुरुष 'गुणातीत' कहलाता है।'

पाठकजन ! श्रीमद्भगवद्गीतामें कहे हुए इन लक्षणोंकी तुलना करके देखेंगे कि महात्मामें प्रायः ये सब गुण दिखायी देते हैं। कहाँ पुलिसकी कप्तानीका जोश और कहाँ एक मामूली मुंशीके द्वारा अपशब्दसे तिरस्कार किये जानेपर शान्त हृदय रहना और चुपचाप चले आना। धन्य हैं ऐसे महात्माजन !

—योगेन्द्रराज भण्डारी,



८

'रामरक्षा' आदिसे लाभके अनुभव

'कल्याण'के सन् १९६३ के अङ्क ५-६ में पीपलके पत्तेके प्रयोगसे सर्प-विष उतरनेकी बात छपी थी। तदनुसार प्रयोग करनेसे एक आदमी दो बार बचे। एक महिलाके उसके प्रयोगसे दस ही मिनटमें विष उतर गया। उसी समयसे मुझे 'कल्याण'में प्रकाशित प्रयोगोंपर विश्वास हो गया। फिर मैंने 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ प्रारम्भ किया। अब मैं किसी भी बीमारीमें उसका प्रयोग करता हूँ तो रोगी भगवान्‌की कृपासे अच्छा हो जाता है। इसके बाद 'कल्याण'के छपे अनुसार गङ्गाजलमें आँखोंवाली दवा बनायी। मेरी माँकी आँखसे ठीक नहीं दीखता था, सबसे पहले उसीपर प्रयोग किया और उन्हें ठीक दीखने लगा। इसके पश्चात् एक पुरुषपर उसका प्रयोग किया, जिसको बिल्कुल नहीं दीखता था। दवाके प्रयोगसे उसे आधा दिखायी देने लगा। अभी दवाका सेवन चालू है। उसके बाद 'कल्याण'में छपे 'बजरंगबाण' को सिद्ध किया। अब तो मैं 'रामरक्षास्तोत्र' और 'बजरंगबाण' दोनोंका खूब प्रयोग करता हूँ। आजकल रोज दोनों वक्त चार-पाँच जगह जाना पड़ता है, लोग बुलाकर ले जाते हैं और पाठ करते ही भगवत्कृपासे रोगीको आराम हो जाता है।

—ठाकुर वृजलालसिंह, रायतम



चोरीका भेद खुल गया

जब थी तब खूब ही सुख-समृद्धि थी कालू खुमाणके घर। वह था काठी राजपूत, पर हृदय समुद्र-सा विशाल था। समयका फेर, बेचारा कालू पैसे-टकेसे खाली हो गया। मित्रोंसे विमुख हो गया।

लड़केकी सगाई हो गयी थी। कन्यापक्षवाले विवाहके लिये बड़ी उतावली मचा रहे थे, पर बेचारा कालू क्या करता? विवाहके लिये कुछ पैसे तो चाहिये ही।

सुदामा-पत्नीकी तरह एक दिन कालूकी धर्मपत्नीने कहा—'यों बैठे रहनेसे कैसे चलेगा? लड़कीवाले घर उठाये ले रहे हैं। तुम कहते थे न कि भूवाभाई तुम्हारे मित्र हैं, जाओ तो सही उनके पास। श्रीकृष्णकी तरह वे कुछ कर देंगे तो अपना काम निकल जायगा। फिर धरती माता खेतीमें अच्छा दिन दिखायेगी; तब देना-लेना चुकता कर दिया जायगा।'

अन्तमें सकुचाते-लजाते कालूने अपनी बूढ़ी घोड़ी तैयार की। फटा-टूटा जीन रक्खा और भूराभाईकी आशा करके घोड़ीपर एड़ी लगायी।

कालू भूराके घर पहुँचा। कालूका हाल-हवाल भूराकी स्त्रीने देखा। उसने कालूका स्वागत तो किया, पर सच्चे मनसे नहीं।

कालूने कहा—'हमारी स्थिति बदल गयी है, लक्ष्मीजी रूठ गयी हैं। लड़केका विवाह करना है। लड़कीवाले तकाजा कर रहे हैं, परंतु पैसोंके बिना विवाह कैसे हो। तुम्हारी देवरानीने कहा—'भूराभाईसे मिलो तो सही, उनमें सहायता करनेकी शक्ति है और वे तुम्हारे मित्र हैं। इसीलिये मैं आया हूँ।'

भूराकी पत्नीने कहा—'तुम्हारे भाई तो व्यापारमें फँसे हैं, उसमें बड़ी पूँजी रुकी है। परंतु तुम उनके आनेतक रुक जाओ।'

मन-बे-मन कालू वहाँ ठहर गया।

नास्तापानीसे निपटकर कालू हुक्का पी रहा था। भूराकी पत्नीने अपने आदमी वीरा वालंदको बुलाकर आदेश दिया—'देख वीरा, मेरे बिछौनेपर जो गद्दा है वह कालू भाईके बिछौनेपर बिछा देना। उसके बाद तुझे घर जाना हो तो जाना!'

वीरा वालंदने गद्दा उठाया, बिछानेके समय उसे झड़काया। अंदर कुछ चमक रहा था। देखा तो सोनेमें हीरा जड़ा हुआ कानमें पहननेका झुमका था।

भूवाकी पत्नीने रातको सोते समय झूमका उतारकर रक्खा था। वह गद्देमे ही रह गया था। झूमका देखकर वीरा विचारमें पड़ गया। उसका मन कैसे वशमें रहता। जल्दी-जल्दी उसने झूमकेको जेबमें डाला और बिछौनेका काम तुरन्त ही सलटाकर कालूको बिछौनेपर सुला दिया। वह अपने घर चला गया। वह खुशी-खुशी अपनी पत्नीसे मिला और जेबसे झूमका निकालकर पत्नीको देते हुए बोला—ले, देख! अपनेपर अब भगवान्‌की कृपा हो गयी।'

परंतु घरवाली यों ही उसकी बात मान लेनेवाली नहीं थी। उसने कहा—'कहाँसे चोरी करके लाये हो। यह तो माताजीका झूमका है। ऐसा चोरीका माल अपने नहीं पच सकता।'

वीराने इस तरफ ध्यान न देकर झूमकेको एक हड़ियामें रक्खा और उसे घरके एक कोनेमें गाड़ दिया।

× × × ×

मुर्गेकी आवाज सुनकर काल्ह जग गया। वस्तुतः विचारोंमें उलझे रहनेके कारण उसको रातभर नींद आयी ही नहीं। उसने तुरन्त ही बूढी घोड़ीपर जीन रक्खा और भूवाकी पत्नीको बिना ही कुछ कहे वह अपने घर लौट गया।

गाँवके बनियेके यहाँ एक हजार रुपयेमें जमीन बंधक रखकर उन रुपयोंसे लड़केका विवाह घरकी रीति-रिवाजके अनुसार धूम-धामके साथ कर दिया। अब उसने शान्तिकी साँस ली।

इधर भूवाकी पत्नीने नहा-धोकर माथेमें बिंदी लगानेके लिये दर्पण सामने रक्खा। देखा तो झूमका नहीं था। उसने तुरन्त ही वीराको पुकारा और कहा—'अरे वीरा! देख तो बिछौनेमें तो मेरा झूमका नहीं रह गया? मेरा झूमका कहाँ चला गया!'

वीराने गद्दा-रजाई, बिछौना आदि सब देख लिया, पर यह तो झूमका खोजनेका उसका नाटकमात्र था। अन्तमें वीराने कहा—'माँ, बुरा न मानो तो एक बात कहूँ। मुझे तो कालूपर वहम होता है। वे बिना ही कुछ कहे चले गये। बेचारे गरीब आदमी हैं। लड़केका विवाह करनेके लिये वे झूमका ले गये होंगे। मुझे तो ऐसा ही लगता है।'

वीराके कथनानुसार भूवाकी पत्नीका भी कालूपर सन्देह दृढ़ हो गया।

एक सप्ताहके बाद भूवा घर आया। भूवाकी पत्नीने पैसेकी मददके लिये कालूके आने, अचानक चले जाने और झूमकेके चुराये जानेकी बात कही। कालूके लड़केके विवाहकी बात सुनाकर वीराने कहा—'मुझे तो लगता है कि उन्होंने झूमका बेचकर उन्हीं रुपयोंसे लड़केका विवाह किया होगा।'

भूवा विचारमें पड़ गया—अपना मित्र सहायताके लिये आया और उसकी सहायताके लिये तो कुछ भी किया नहीं जा सका, उल्टे उसपर झूमकेकी चोरीका इलजाम लगाना पड़ रहा है। अन्तमें भूवाने एक चिट्ठी लिखी—'कालूभाई! तुम बहुत दिनोंके बाद यहाँ आये और मैं तुमसे मिल नहीं पाया, इसके लिये मुझे दुःख है। तुम

यहाँसे जो झूमका ले गये थे, उसका काम हो गया हो तो वापस भेज देना। सब कुशल है। काम-काज लिखना।'

काळूने चिट्ठी पढ़ी और वह विचारमें पड़ गया। 'कैसा झूमका और कैसी बात! इसमें कोई रहस्य होना चाहिये। जो कुछ भी हो भगवान् सबके समान मालिक हैं। भाईने कैसे अच्छे ढंगसे विचार-पूर्वक चिट्ठी लिखी है, इससे मेरे प्रति उनके मनमें मानकी भावना दीख रही है।'

दिमागको ठंडा करके काळूने विचारपूर्वक अपने खानदानी स्वभावसे उत्तर लिखा—'भाई भूवा भाई, आभार! आजके दसवें दिन मै स्वयं झूमका लेकर पहुँचूँगा। निश्चिन्त रहना।'

काळूने अपनी शेष जमीन बंधक रखकर एक हजार रुपये लिये और उनसे एक सुन्दर झूमका बनवाया। फिर सोचने लगा—'उस झूमकेकी पता नहीं, कितनी कीमत रही होगी। कहीं ज्यादा कीमतका होगा तो इस घोड़ीको दे दूँगा। फिर सब ठीक हो जायगा। क्या सत्यकी जय नहीं होगी?'

आज दसवाँ दिन था। भूवा अपनी देहलीपर बैठा काळूकी बाट देख रहा था। इतनेमें काळूको आते देखा। वह पास आ गया। भूवा सामने गया। 'राम राम' की। अपने गद्दे-तकियेपर काळूको बैठाया। फिर वीरा वालंदको बुलाकर कहा—'अरे वीरा! यह घोडी थकी हुई है, इसे छायामें बाँधकर घास-पूला डाल दे।'

'हाँ जी,' कहता हुआ वीरा घासके बहाने अपने घर पहुँच गया और चुटकी बजाते हुए पत्नीसे बोला—'ले, तू

न कि यह चोरीका झूमका नहीं पचेगा, पर अब तो सचमुच ही पच रहा है। वह काल्ह नया झूमका लेकर देनेके लिये आ पहुँचा है। बोल, अब यह झूमका पचेगा या नहीं?'

घास-पूला डालनेमें वीराको देर हो गयी थी, इसलिये भूवाको कुछ सन्देह-सा हुआ। वह तुरंत उठकर चला घास लानेके लिये। घास वीरा वालंदके घरके पीछे भरा था। भूवा उस समय वहाँ पहुँचा, जब वीरा अपनी पत्नीसे उपर्युक्त बात कहने लगा था। वीराकी बात सुनकर भूवा चकित रह गया! वह बड़बड़ाया—'भगवान्! आज तुमने मेरी और मेरे मित्रकी—दोनोंकी लाज रक्खी!'

तुरंत ही वह बड़ी तेजीसे वीराके घरमें जा पहुँचा और वीराके गालपर एकके बाद एक—दो-तीन तमाचे जड़ दिये। वीरा घबरा गया। वह काँपने लगा।

भूवाने कहा—'हरामखोर! तुझे झूमका पचाना है। मैंने तुम दोनोंकी बातें सुन ली है। चोरी सिर चढ़कर बोलती है। ला, अभी दे वह झूमका, नहीं तो, अपनेको मरा ही समझना!'

वीराके होश-हवाश हवा हो गये। वह कोनेमें गया। उसने खोदकर हड़िया निकाली और उसमेंसे झूमका निकालकर काँपते हाथों लाकर भूवाभाईको दे दिया। अब लम्बी बात न चलाकर भूवाने झूमका जेबमें रक्खा और घर लौट आया।

तुरन्त ही गाँवके पाँच बड़े-बूढ़ोंको बुलाया। आवभगत की। फिर कहा—'काल्ह भाई! तुम झूमका लाये हो? बिना कहे ले गये थे न?'

काळूने कहा—'हाँ भाई ! जल्दीमें मैं झूमका ले गया था। कहना रह गया। लो, यह तुम्हारा झूमका, भूल-चूक माफ करना।' इतना कहकर उसने अँगरखेसे झूमका निकालकर भूवाके हाथपर रख दिया।

वहाँ बैठे सभी काळूकी ओर एकटक देख रहे थे। भूवा-भाई तो विचारमें ही पड़ गये। वे घरके अन्दर गये। पत्नीसे दूसरा झूमका लेकर आये। अपनी जेबमेंसे वीरा वालंदसे मिला हुआ झूमका निकाला और तीसरा काळूका लाया हुआ झूमका था। यों तीनों झूमके पंचोंके सामने रखकर भूवाभाईने पंचोंसे कहा—'इनमेंसे सच्ची जोड़के दो झूमके आप अलग कर दीजिये।'

काळूवाला नया झूमका जोड़में नहीं आया। शेष दोनों झूमके एक जोड़के हैं—पंचोंने अपना निश्चय सुना दिया।

भूवाभाईने कहा—'काळूभाई ! हमारी ओरसे तुमको बड़ा दुःख पहुँचाया गया है। धन्य है तुम्हारी खानदानको और तुम्हारी मानवताको। तुम्हारे-जैसा भाई-मित्र मिलना कठिन है।'
'अखण्ड आनन्द'

—उमियाशंकर ठाकुर

आदर्श ईमानदारी

कुछ पुरानी बात है, श्रीरामदुलाल सरकारका बचपन निर्धनतामें बीता। बड़े होनेपर उन्होंने एक व्यापारीके यहाँ पाँच रुपये महीनेपर नौकरी कर ली।

वे बड़ी मेहनत और ईमानदारीसे कार्य करते थे। इससे मालिक प्रसन्न था। धीरे-धीरे वह रामदुलालसे हजारों रुपयोंका लेन-देन कराने लगा। रामदुलालके हिसाबमें कभी एक पाईकी भी गड़बड़ न होने पाती थी।

एक दिन कलकत्तेमें कुछ दूकानें नीलाम होनेवाली थीं। मालिकने रामदुलाल सरकारको एक दूकान खरीदनेके लिये भेजा। उनके वहाँ पहुँचनेके पूर्व ही एक दूकान नीलाम हो गयी थी। अब दूसरी दूकान नीलाम होने लगी।

रामदुलालने उसकी कीमतका सही अनुमान लगा लिया था। बोली बोली जाने लगी। रामदुलाल भी रुपये बढ़ाने

लगे। अन्तमें इनके नामसे वह दूकान १४०००) रुप
गयी। रुपये ये साथ ले गये थे, तुरंत रुपये दे दिये। य
सब आश्चर्य करने लगे कि यह कैसा मूर्ख है। ४००
की दूकानके १४०००) रुपये दे डाले; क्योंकि पहल
कम रुपयोंमें ही नीलाम हुई थी और इस दूकानकी
इतनी ही समझी जा रही थी। लोगोंकी इस
श्रीरामदुलालजी घबराये। वे चिन्ता करने लगे कि पता
कार्यसे उनपर मालिक कितने नाराज होंगे और उन
उत्तर दूँगा।

इतनेमें भगवान्की प्रेरणासे, एक बड़ा अंग्रेज
वहाँ आया। बड़े अच्छे मौकेपर होनेके कारण उसे उस
बड़ी आवश्यकता थी। उसने रामदुलालसे वह दूकान
कीमतपर उसे देनेके लिये कहा और बढ़ते-बढ़ते उसके
चौदह हजार रुपयेतक लगा दिये।

अब रामदुलालने अधिक लोभमें न पड़कर उसे वह
११४०००) रुपयेमें बेच डाली और रुपये लेकर
मालिकके पास पहुँचे। रामदुलाल चाहते तो एक ल
स्वयं ले सकते थे और चौदह हजार अपने स्वामीको
थे। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया; वे बड़े ईमानदार,
स्वामिभक्त एवं बातके धनी थे। मालिकने किसीसे सु
उनके मुनीम रामदुलालने चार हजारकी दूकानके चौदह
दिये हैं, अतः वे क्रोधमें भरे बैठे थे। रामदुलालको

बोले—'रामदुलाल ! तुम तो जान पड़ते हो मेरा दीवाला निकालकर ही दम लोगे ?' चार हजारकी दूकानके तुमने चौदह हजार क्यों दिये ?' रामदुलालने रुपये देते हुए धीरेसे कहा—'बाबूजी ! ये लीजिये आपके चौदह हजार रुपये और ये एक लाख रुपये मुनाफेके अलग लीजिये । मै चौदह हजारकी दूकान ११४०००) रुपयेमें एक अंग्रेज व्यापारीको वेच आया हूँ । अब तो आप प्रसन्न हैं ?' रामदुलालने आदर्श ईमानदारीका उदाहरण उपस्थित किया, आदर्श स्वामि-भक्तका कर्तव्य निभाया । मालिक प्रसन्न होकर बोले, 'भाई रामदुलाल ! तुम्हारी इस आदर्श ईमानदारी एवं स्वामि-भक्तिसे मै वहुत ही प्रसन्न हूँ । ये एक लाख रुपये तुमने ही कमाये हैं; अतएव इन्हें तुम ही ग्रहण करो । इनपर मेरा कोई अधिकार नहीं है ।' वहुत ही आग्रह करके मालिकने रुपये दे दिये । तदनन्तर रामदुलालने अपना अलग कारोबार चलाया और थोड़े समयमें वे एक अच्छे व्यापारी बन गये । आधुनिक युगमें तो आदर्श ईमानदारीके ऐसे उदाहरण वहुत ही कम मिलते हैं ।

—प्रो० श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०

